शुष्क क्षेत्र में चारा फसलों एवं चरागाह विकास की उन्नत तकनीकियाँ

मावजी पाटीदार, महावीर प्रसाद राजोरा एवं बसन्त कुमार माथुर

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसन्धान संस्थान
(आई.एस.ओ. 9001 : 2015)
जोधपुर 342 003 (भारत)

शुष्क क्षेत्र में चारा फसलों एवं चरागाह विकास की उन्नत तकनीकियाँ

मावजी पाटीदार
महावीर प्रसाद राजोरा
बसन्त कुमार माथुर

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसन्धान संस्थान
(आई.एस.ओ. 9001 : 2015)
जोधपुर 342 003 (भारत)

प्रकाशक

निदेशक
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
जोधपुर 342 003, राजस्थान
दूरभाषः +91 291 2786584 फैक्सः +91 291 2788706
ई–मेलः director.cazri@icar.gov.in
वेबसाईटः http://www.cazri.res.in

संदर्भः मावजी पाटीदार, महावीर प्रसाद राजोरा एवं बसन्त कुमार माथुर 2018. शुष्क क्षेत्र में चारा फसलों एवं चरागारह विकास की उन्नत तकनीकियाँ, भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, 62 पृ.

मुद्रकः

एवरग्रीन प्रिन्टर्स
14–सी, हैवी इण्डस्ट्रीयल एरिया, जोधपुर

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
जोधपुर - 342 003 (राजस्थान), भारत
ICAR-Central Arid Zone Research Institute
(Indian Council of Agricultural Research)
Jodhpur - 342 003 (Rajasthan), India

डॉ. ओम प्रकाश यादव
निदेशक
Dr. O.P. Yadav
Director

प्राक्कथन

राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में पशुधन आधारित कृषि प्रणाली महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ कम व अनिश्चित वर्षा के कारण फसलों का उत्पादन जोखिम भरा है इसलिए केवल फसल आधारित खेती करने से किसानों की आय में वृद्धि की संभावना कम रहती है। इन परिस्थितियों में पशुपालन आधारित कृषि प्रणाली आर्थिक स्थिरता और किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिए एक उचित व्यवसाय है। राज्य में मानव एवं पशुधन की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। राज्य में पशुधन की संख्या में वर्ष 2003 (494.5 लाख) से वर्ष 2012 (577.3 लाख) तक 16.74 प्रतिशत की वृद्धि हुई। राज्य की लगभग 9.16 प्रतिशत सकल घरेलू आय पशुपालन से प्राप्त होती है और यहाँ डेयरी विकास की प्रबल संभावनाएँ हैं। किसानों का मुख्य व्यवसाय पशुपालन होने के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि दुग्ध उत्पादन में वृद्धि की जाए। दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए अच्छी नस्ल के पशुओं के रख–रखाव एवं प्रबंधन के साथ–साथ उचित एवं संतुलित पोषण आवश्यक है। चारे की कमी के कारण पशुधन की उत्पादकता का पूरा दोहन नहीं हो पा रहा है। उपलब्ध संसाधनों से सिंचित, असिंचित एवं समस्याग्रस्त भूमियों पर उचित चारा उत्पादन तकनीकियों द्वारा अधिक चारा प्राप्त करना आवश्यक है। वैज्ञानिकों के निरंतर प्रयास द्वारा चारा उत्पादन की नवीन तकनीकियों का विकास हुआ है परंतु इन तकनीकियों का समुचित लाभ किसानों को नहीं मिल पा रहा है, इसलिए चारा उत्पादन तकनीकियों को किसानों तक पहुँचा कर चारा उत्पादन के साथ पशुधन की उत्पादकता एवं किसानों की आय में वृद्धि की जा सकती है। इसका प्रयास इस पुस्तिका में किया गया है ।

मुझे खुशी है कि भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर द्वारा चारा उत्पादन तकनीकियों का संकलन कर प्रस्तुत प्रकाशन ''शुष्क क्षेत्र में चारा फसलों एवं चरागाह विकास की उन्नत तकनीकियाँ'' में प्रकाशित किया जा रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह संकलन राजस्थान के किसानों, पशुपालकों व कृषि विस्तार से जुड़े कार्यकर्ताओं, शोधकर्ताओं एवं विद्यार्थियों के लिए लाभकारी होगा।

(ओम प्रकाश यादव)

भूमिका

राजस्थान की कृषि अर्थव्यवस्था में फसल उत्पादन के साथ–साथ पशुपालन का महत्वपूर्ण योगदान है। देश के दुग्ध, माँस एवं ऊन के उत्पादन में राजस्थान का योगदान क्रमशः 11, 30 एवं 31 प्रतिशत है। राजस्थान का लगभग 60 प्रतिशत भाग शुष्क क्षेत्र में आता है, जहाँ वर्षा आधारित खेती के कारण पशुपालन का महत्व और भी बढ़ जाता है। राजस्थान के शुष्क क्षेत्र के जिलों में पशु संख्या अन्य जिलों से अधिक है। 2012 की पशुगणना के अनुसार पश्चिमी राजस्थान में 301.4 लाख पशु हैं जिसमें 20.49 प्रतिशत गायें, 13.08 प्रतिशत भैंसें, 22.81 प्रतिशत भेड़ें, 42.42 प्रतिशत बकरियाँ एवं 1.18 प्रतिशत अन्य जानवर हैं। इस क्षेत्र में कम वर्षा के कारण इतनी बड़ी संख्या में पशुओं को खिलाने के लिए चारा पर्याप्त नहीं है। अकाल के समय चारे की कमी और ज्यादा हो जाती है। जलवायु की विषमता के साथ, चरागाहों के कुप्रबंधन एवं अत्यधिक चराई से, उपलब्ध चराई भूमि की उत्पादकता भी घटती जा रही है। ऐसी स्थिति में चारा उत्पादन एवं चरागाह विकास महत्वपूर्ण हो जाता है। अतः उन्नत तकनीक अपनाकर उपलब्ध संसाधनों से विभिन्न परिस्थितियों में अधिक एवं पौष्टिक चारा प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु कृषकों में अधिक एवं पौष्टिक चारा उत्पादन की उन्नत तकनीकों के बारे में जानकारी का अभाव है। इसी बात को ध्यान में रखते हुये भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर द्वारा शुष्क क्षेत्र में चारा उत्पादन बढ़ाने के लिए नई तकनीक के विकास पर निरन्तर कार्य चल रहा है। इसके अलावा अन्य संस्थानों में विकसित तकनीकों के प्रचार एवं प्रसार पर भी ध्यान दिया जा रहा है। प्रस्तुत प्रसार बुलेटिन (पुस्तिका) में चरागाह विकास, चारा फसलों का महत्व एवं उनकी उन्नत खेती का विस्तृत वर्णन किया गया है। हम आशा करते हैं कि यह पुस्तिका (बुलेटिन) अपने उद्देश्यों को पूरा करने मे खरी उतरेगी, साथ ही हमारे कृषि प्रसार कार्यकर्ता एवं कृषक बन्धु इससे अधिक से अधिक लाभान्वित होंगे।

लेखकगण

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1	परिचय	1
2	खरीफ चारा फसलों की उन्नत खेती	4
3	रबी चारा फसलों की उन्नत खेती	17
4	वन–चरागाह पद्धति से चारा उत्पादन	27
5	घास उत्पादन की उन्नत तकनीकियाँ	35
6	सीमित सिंचाई द्वारा चारा उत्पादन फसल क्रम	49
7	चारे की पौष्टिकता में वृद्धि के उपाय	52
8	सम्पूर्ण पशु आहार बट्टिका	55
9	चारा संरक्षण	59
10	उन्नत बीजों की उपलब्धता के स्रोत	62

1. परिचय

कृषि भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मूल आधार है, वर्ष 2015–16 में देश के सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में कृषि का योगदान लगभग 17.4 प्रतिशत रहा तथा कृषि विकास वृद्धि दर केवल 1.2 प्रतिशत थी। देश में खाद्य सुरक्षा हेतु कृषि विकास दर 4 प्रतिशत के आस–पास होनी चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र में ज्यादातर लोग प्रत्यक्ष रूप से कृषि से जुड़े हुए हैं, साथ ही पशुपालन से प्राप्त आय का ग्रामीण अर्थव्यवस्था में हमेशा से ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दुग्ध उत्पादन कृषि अर्थव्यवस्था में 20 प्रतिशत का योगदान देता है। कृषि तन्त्र में जानवरों को समुचित संख्या में उपयोग में लाकर प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है। खेती के सहउत्पाद पशुओं के काम में आ जाते हैं व पशुओं से प्राप्त उत्पाद जैसे दुग्ध उत्पाद, माँस, ऊन, गोबर आदि प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ाने का काम करते हैं।

जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ पशु उत्पादों की आवश्यकता में भी वृद्धि हो रही है। बढ़ती हुई दूध एवं अन्य उत्पादों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए दो बातों पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है, पहली, अच्छी और अच्छे आनुवांशिक गुणों वाले पशु तथा दूसरी, ऐसे उत्पादक पशुओं के लिए पौष्टिक चारा और बांटा। इस दिशा में सफलता प्राप्त करने के लिए संकर गायों के प्रजनन कार्य भारत के लगभग सभी भागों में प्रारंभ कर दिया गये हैं। संकर नस्ल की गायों से अच्छे प्रबंध द्वारा एक ब्याँत में 3000 से 3500 लीटर दूध प्राप्त किया जा सकता है परन्तु किसानों के पास ये गायें 1600 से 2000 लीटर तक दूध देती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि आज के समय इस प्रबंध की दशा में इन पशुओं से पूरी क्षमता का केवल आधा ही दूध प्राप्त किया जा रहा है। इसके अलावा देशी नस्ल के पशुओं को भी उचित पौष्टिक आहार नहीं मिल पाता है, जिससे उनकी उत्पादन क्षमता भी निरन्तर घटती जा रही है। इसका मुख्य कारण अच्छे एवं पोषक चारे की कमी है। इसलिए पशुओं की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए पौष्टिक चारे का उचित प्रबंधन अति आवश्यक है।

शुष्क क्षेत्र में पशुपालन का महत्व और भी अधिक है, क्योंकि यहाँ फसलोत्पादन विषम परिस्थितियों में किया जाता है। राजस्थान की अर्थव्यवस्था फसलोत्पादन तथा पशुपालन दोनों पर निर्भर करती है एवं राज्य की सकल घरेलू आय का लगभग 8 प्रतिशत भाग पशुपालन से प्राप्त होता है। राजस्थान देश में दूध, माँस और ऊन उत्पादन क्रमशः 11, 30 एवं 31 प्रतिशत योगदान देता है (पशुगणना–2012, पशुपालन विभाग जयपुर)। राजस्थान में कुल भू–भाग का लगभग 196.7 लाख हेक्टेयर शुष्क क्षेत्र है, जिसमें लगभग 100 लाख हेक्टेयर भूमि पर खेती की जाती है जो ज्यादातर वर्षा आधारित है। सिंचित क्षेत्र का हिस्सा लगभग 10–15 प्रतिशत रहता है। यहाँ पर वनों का क्षेत्रफल 2 प्रतिशत से भी कम है, जबकि पर्यावरण का संतुलन बनाए रखने के लिए यह 33 प्रतिशत होना चाहिए। लगभग 40 प्रतिशत भूमि पड़त, बंजर एवं खराब रहती है। इस प्रकार के भू–क्षेत्र बढ़ने की संभावनाऐं और अधिक जताई जा रही हैं। केवल 4 प्रतिशत भूमि

ओरण–गोचर व चरागाह के लिए है (सारणी 1), जिसकी उत्पादन क्षमता 300 कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष से भी कम है। इस तरह शुष्क क्षेत्र में न केवल कृषि उत्पादन कम होता है, अपितु पशुओं के लिए आवश्यक चारे की पूर्ति भी नहीं हो पाती जिससे पशुओं की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

सारणी 1 राजस्थान में विभिन्न चारा के स्रोत

भू–उपयोग	राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
	क्षेत्रफल (लाख हेक्टेयर)	कुल क्षेत्र का प्रतिशत	क्षेत्रफल (लाख हेक्टेयर)	कुल क्षेत्र का प्रतिशत
जंगल	27.35	7.97	4.92	2.36
बंजर भूमि	22.92	6.69	9.82	4.72
चरागाह	16.97	4.95	8.93	4.29
कृषि अयोग्य भूमि	44.74	13.06	36.43	17.49
परती भूमि	41.02	11.97	27.92	13.41
खेती योग्य भूमि	169.74	49.53	108.02	51.87
कुल क्षेत्र	342.66	–	208.2	–

स्त्रोतः कृषि सांख्यिकी राजस्थान वर्ष 2009–10

इस समय देश के कुल कृषि योग्य भूमि की 4–5 प्रतिशत (लगभग 80 लाख हेक्टेयर) भूमि चारा फसलों की खेती के काम आ रही है जिससे लगभग 5255 लाख टन हरे चारे का उत्पादन हो जाता है जबकि पशुओं के लिए लगभग 8168 लाख टन हरे चारे की प्रति वर्ष आवश्यकता होती है। इस प्रकार हरे चारे की लगभग 36 प्रतिशत कमी रहती है (सारणी 2)। पश्चिमी राजस्थान में हरे चारे की कमी और भी ज्यादा रहती है अच्छी वर्षा के समय सभी स्त्रोतों से मात्र 140–150 लाख टन सूखा चारा एवं 80–90 लाख टन हरा चारा उपलब्ध हो पाता है, इससे केवल 35–40 प्रतिशत शुष्क पदार्थ की आवश्यकता की पूर्ति होती है तथा लगभग 35 प्रतिशत सूखे एवं 75 प्रतिशत हरे चारे की कमी रह जाती है। चारे की कमी को पूरा करने के लिए चारे की खेती के अन्तर्गत क्षेत्रफल बढ़ाना एक मुश्किल काम है। चारे की उपज बढाने के लिए उन्नत तकनीक द्वारा चारा फसलों की खेती तथा चरागाहों का विकास करने की आवश्यकता है। इसके लिए भूमि, जलवायु एवं सिंचाई की उपलब्धता के अनुसार अधिक चारा उपज देने वाली फसलें एवं उन्नत किस्मों का चयन, उचित फसल–चक्र, उत्पादन तकनीक, चराई एवं कटाई प्रबंधन आदि बातों का ध्यान रखना महत्वपूर्ण है। कभी–कभी वर्षा आधारित क्षेत्रों में द्विउद्देशीय फसलों एवं कृषि अयोग्य भूमि पर

बहुउद्देशीय वृक्ष एवं झाड़ियों के साथ उन्नत घासों की खेती कर चारे का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त काफी मात्रा में हरा चारा एवं घासों का उचित उपयोग नहीं हो पाता है और चारा खराब हो जाता है। ऐसी स्थिति में चारे का संरक्षण करके उसका लम्बे समय तक उपयोग किया जा सकता है। इस पुस्तिका में इन सभी बातों को ध्यान रखकर चारा उत्पादन एवं चरागाह विकास की उन्नत तकनीकियों का वर्णन किया गया है।

सारणी 2 चारे की अनुमानित माँग, उपलब्धता (लाख टन) व कमी (प्रतिशत)

प्रकार	भारत*			राजस्थान			पश्चिमी राजस्थान		
	माँग	उपलब्धता	कमी	माँग	उपलब्धता	कमी	माँग	उपलब्धता	कमी
हरा चारा	8168	5255	35.6	779	321	58.8	412	106	74.2
सूखा चारा	5089	4532	10.9	413	201	49.5	218	121	35.9

*स्त्रोतः आईसीएफआरआई विजन 2050

2. खरीफ चारा फसलों की उन्नत खेती

खरीफ में मुख्य रूप से बाजरा, ज्वार, मक्का जैसी फसलों एवं नेपियर घास को हरे चारे के लिए उगाते हैं। मक्का, ज्वार एवं नेपियर की फसल के लिए अधिक पानी की आवश्यकता होती है, जबकि बाजरा को कम पानी की आवश्यकता होती है। इसके अलावा दलहनी फसलें जैसे ग्वार और चंवला को शुद्ध, मिश्रित अथवा अन्तराशस्य के रूप में चारे की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए उगाया जाता है। उपरोक्त चारा फसलों की निम्नलिखित उन्नत विधियाँ अपनाकर अधिक एवं पौष्टिक चारा प्राप्त किया जा सकता है।

ज्वार (*सोरघम बाईकलर*)

ज्वार खरीफ एवं जायद ऋतु की मुख्य चारा फसल है। इसको सिंचित व असिंचित दोनों अवस्था में उगाया जा सकता है। पशुओं के लिए इसका चारा पर्याप्त रूप से पौष्टिक होता है। इसके चारे में औसतन 4.5 से 6.5 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन होता है। ज्वार का हरा चारा, कड़बी तथा साइलेज तीनों ही अवस्था पशुओं के लिए उपयोगी तथा शक्तिवर्धक हैं। चारे की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए ज्वार को दलहनी फसलों जैसे चंवला, मूंग, ग्वार आदि के साथ मिलाकर बोया जा सकता है।

जलवायु और भूमि: ज्वार की वृद्धि के लिए तुलनात्मक रूप से अधिक तापमान की आवश्यकता होती है। 33–34° सेल्सियस तापमान पर पौधों की अच्छी वृद्धि होती है, इसलिए खरीफ और जायद की फसल के रूप में इसको उगाया जाता है। ज्वार के लिए दोमट एवं बलुई दोमट भूमि अच्छी मानी जाती है। उचित जल निकास वाली भारी मृदा में भी इसकी बुवाई की जा सकती है। मृदा का पी.एच. मान 6.5 से 7 तक उपयुक्त रहता है। ज्वार को 30 से 75 से.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है।

उन्नत किस्में: ज्वार की चारे के लिए दो प्रकार की किस्में विकसित की गई हैं।

बहु कटाई वाली किस्में: मीठी सूडान, एसएसजी 59–3, एमपी चरी, पूसा चरी–23, जवाहर चरी–69, जेसी–9।

एक कटाई वाली किस्में: लिलडी ज्वार, सीएसवी–15, सीएसवी–17, सीएसएच–13, राज चरी–1, राज चरी–2, पूसा चरी–6 आदि मुख्य किस्में हैं।

खेत की तैयारी: ज्वार की खेती के लिए खेत की मिट्टी को भुरभुरी बनाना आवश्यक है। हल्की मृदाओं में ज्यादा जुताई की आवश्यकता नहीं होती। दो बार हैरो चलाकर पाटा लगाने से खेत पूर्ण रूप से तैयार हो जाता है। इसके अलावा दो या तीन वर्ष में एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से या तवेदार हल से जुताई करनी चाहिए। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में मेड़ व खाई बनाकर जल संरक्षण करना चाहिए। दीमक की रोकथाम के लिए अन्तिम जुताई से पूर्व 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर क्यूनॉलफास 1.5 प्रतिशत चूर्ण को खेत में मिट्टी में मिलाना चाहिए।

बीज एवं बुवाई : शुष्क क्षेत्रों में वर्षा के आरम्भ होते ही ज्वार की बुवाई कर देनी चाहिए। जिन स्थानों पर सिंचाई के साधन उपलब्ध हों वहाँ जून के प्रथम या द्वितीय सप्ताह में बुवाई करें। गर्मियों में चारा प्राप्त करने के लिए मार्च में बुवाई की जा सकती है। बीज दर 20–25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर होनी चाहिए। बुवाई 25–30 से.मी. की दूरी पर पंक्तियों में करें तथा बीजों को 1.5 से 2.0 से.मी. की गहराई पर बोएं। बुवाई से पूर्व एजोस्पीरिलम जीवाणु कल्चर द्वारा बीजों का उपचार करना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : बुवाई के 15–20 दिन पूर्व गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद या कम्पोस्ट 10–15 टन प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। इसके अतिरिक्त 80 कि.ग्रा. नत्रजन तथा 40 कि.ग्रा. फास्फोरस की आवश्यकता होती है। फास्फोरस की पूर्ण मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई के समय तथा नत्रजन की शेष मात्रा बुवाई के 30 दिन बाद छिड़क कर प्रयोग करें। कम वर्षा वाले क्षेत्र में उर्वरकों की आधी मात्रा का प्रयोग करें।

सिंचाई प्रबंधन : वर्षा ऋतु में बोई गई फसल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है, परन्तु लम्बे समय तक वर्षा न होने की स्थिति में सिंचाई की जरूरत पड़ सकती है। जून माह में पलेवा देकर बोई गई फसल में एक या दो सिंचाईयों की आवश्यकता पड़ती है। ग्रीष्म कालीन फसल में 10–15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए।

फसल सुरक्षा : वर्षा कालीन ज्वार में खरपतवार की समस्या अधिक रहती है। इसलिए बुवाई के 15–20 दिन उपरांत निराई–गुड़ाई करें या एट्राजीन नामक रसायन के 0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के तुरन्त बाद खेत में समान रूप से छिड़कना चाहिए। इस समय खेत की ऊपरी सतह का नम रहना आवश्यक है। ज्वार की फसल में तना मक्खी का प्रकोप अधिक होता है। इसकी रोकथाम के लिए बुवाई के समय बीज के साथ 15 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर फोरेट 10 प्रतिशत या कार्बोफ्यूरान 3 जी नामक रसायन के दानों को डालना चाहिए।

कटाई : ज्वार की कटाई पर विशेष ध्यान देना पड़ता है, क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में 'धूरिन' नामक ग्लाइकोसाइड की मात्रा अधिक होती है। अतः ज्वार को बुवाई के 40–50 दिन बाद ही काटना चाहिए। इस समय 'धूरिन' की मात्रा कम हो जाती है और चारे की पौष्टिकता अधिक होती है। बहु–कटाई वाली किस्मों में फसल की पहली कटाई 50–55 दिन बाद तथा आगामी कटाईयाँ 30–35 दिन के अन्तराल पर करनी चाहिए। सूखा चारा अथवा 'हे' बनाने के लिए पौधों को 'बूट' अवस्था में काटना चाहिए। इस समय अधिकतर पत्तियाँ हरी रहती हैं व चारे में पौष्टिक तत्व प्रचुर मात्रा में रहते हैं। चारे की उपज किस्म के गुण एवं कटाई की अवस्था पर निर्भर करती है। हरे चारे की कुल पैदावार औसतन 25 से 60 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त की जा सकती है।

फसल–चक्र : चारे के लिए बोई गई खरीफ ज्वार के बाद, बरसीम, रिजका, जई, गेहूँ, जौ इत्यादि फसलों को बोया जा सकता है। ज्वार को अधिक नत्रजन की आवश्यकता होती है, इसलिए इसके बाद दलहन फसल को उगाना चाहिए जिससे भूमि की उर्वरता बनी रहे। ज्वार को चारे वाली फसल के साथ मिश्रित फसल के रूप में भी बोया जा सकता है (चित्र 1)। चंवला, मूँग, ग्वार या मोठ को ज्वार के साथ बुवाई करने से चारे की पौष्टिकता में वृद्धि होती है।

चित्र 1 ज्वार की ग्वार के साथ बुवाई

मक्का (*जीया मेज*)

मक्का चारे एवं अनाज के लिए उगाई जाने वाली एक प्रमुख फसल है। इसका चारा पौष्टिक व स्वादिष्ट होता है। इसके चारे में 7–10 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन, 25–30 प्रतिशत रेशा तथा अन्य तत्व पाए जाते हैं। इसके चारे में पुष्पन की अवस्था में पाचनशीलता अधिकतम (लगभग 50 प्रतिशत) होती है। मक्का को किसी भी अवस्था में काटकर पशुओं को खिलाया जा सकता है। इसके चारे का साइलेज भी बनाया जा सकता है, तथा दाने निकालने के बाद सूखे चारे के रूप में भी पशुओं को खिलाया जाता है। मक्का को सिंचित क्षेत्रों में वर्ष भर उगाया जा सकता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में इसकी खेती खरीफ ऋतु में सफलतापूर्वक की जा सकती है।

जलवायु एवं भूमि : मक्का के लिए प्रायः गर्म एवं नम जलवायु की आवश्यकता होती है। पौधों की सामान्य वृद्धि के लिए 30 से 35° सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। मक्का की सफल खेती के लिए दोमट जीवाश्म युक्त उपजाऊ भूमि अच्छी रहती, जिसमें जल निकास का पूर्ण प्रबंध हो। क्षारीय भूमि मक्का की खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती इसलिए मृदा का पी.एच. मान 6 से 7 के मध्य होना चाहिए।

उन्नत किस्में : मक्का की दाने वाली किस्मों को भी चारे के लिए उगाया जा सकता है। ऐसी किस्में जिनके पौधे दाना पकने की अवस्था तक हरे रहते हैं चारे के लिए अधिक उपयुक्त हैं। संकुल मक्का की विजय, जवाहर, किसान आदि किस्में अनाज व चारे दोनों के लिए उपयुक्त हैं। अफ्रीकन टॉल, जे–1006 तथा प्रताप मक्का चरी–6 किस्में केवल चारे के लिए ही उगाई जाती हैं।

खेत की तैयारी : बुवाई से पहले भूमि को अच्छी तरह से तैयार कर लेना चाहिए। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से व अन्य दो जुताईयाँ हैरो या देशी हल या कल्टीवेटर से करके मिट्टी को भुरभुरी बनाते हैं जिससे बीज मिट्टी के साथ अच्छी तरह से सम्पर्क में आ जाएं एवं अंकुरण एक समान व जल्दी हो।

बीज एवं बुवाई : मक्का को ज्वार एवं बाजरे की फसलों की अपेक्षा पानी की अधिक आवश्यकता होती है। जहाँ पर वर्षा अच्छी होती है वहाँ मक्का को मानसून के आरम्भ होते ही बुवाई करनी चाहिए। सिंचित क्षेत्र में खरीफ की फसल के लिए जून का महीना तथा जायद की फसल के लिए मार्च व अप्रैल के महीने मक्का की बुवाई के लिए सर्वोत्तम हैं। चारे की फसल के लिए 40–50 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर उपयुक्त होता है। पंक्तियों में बुवाई करने से खरपतवार निकालने व अन्तराशस्य क्रियाए करने में सुविधा रहती है। पंक्तियों के बीच की दूरी 30 से.मी. रखनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : चारे के लिए उगाई जाने वाली मक्का की फसल में खाद की आवश्यकता भूमि की उर्वरा शक्ति पर निर्भर करती है। अच्छी वृद्धि के लिए 10–15 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद या कम्पोस्ट को बुवाई से पूर्व अंतिम जुताई के समय खेत में मिला देवें। इसके अतिरिक्त 80 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 40 कि.ग्रा. फास्फोरस की आवश्यकता पड़ती है। फास्फोरस की पूरी मात्रा एवं नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई के समय एवं नत्रजन की शेष मात्रा बुवाई के 30–40 दिन बाद पंक्तियों के बीच में समान रूप से छिड़क देनी चाहिए। बलुई या हल्की भूमि में नत्रजन की मात्रा को तीन बराबर भागों में बांटकर प्रयोग में लेना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन : मक्का की जल आवश्यकता लगभग 440 मि.मी. है। पानी की कमी से पौधे मुरझा जाते हैं तथा उनकी लम्बाई तथा उत्पादन शक्ति कम हो जाती है। सिंचित क्षेत्रों में जहाँ भूमि में नमी की कमी हो तो पलेवा देकर बुवाई करनी चाहिए। इसके बाद 15–20 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करें। प्रारम्भिक अवस्था में खेत में अधिक जल भरा रहने से पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है, इसलिए आवश्यकता से ज्यादा पानी नहीं देना चाहिए। मक्का की फसल में सिंचाई के जल की उचित मात्रा एवं अनावश्यक जल के निकास का उत्तम प्रबंधन, सफल खेती के महत्वपूर्ण अंग हैं। अच्छी पैदावार लेने के लिए 5 से 6 सिंचाइयाँ गर्मियों में और पर्याप्त वर्षा न होने पर 3–4 सिंचाइयाँ वर्षा ऋतु में आवश्यक हैं।

खरपतवार नियंत्रण : खरीफ की फसल के साथ कई खरपतवार उगते हैं जिससे फसल की वृद्धि एवं चारे की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इसलिए बुवाई के 20–25 दिन बाद पहली निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों

को निकाल देना चाहिए। इसके अतिरिक्त, आवश्यकता पड़ने पर दूसरी निराई–गुड़ाई करें। खरपतवारों की रोकथाम के लिए अंकुरण पूर्व शाकनाशी जैसे एट्राजीन या सिमाजिन 0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को 600 लीटर पानी में घोलकर प्रयोग करें।

कटाई प्रबंधन : चारे की मक्का में केवल एक ही कटाई की जा सकती है, क्योंकि एक बार काटने के पश्चात् उसमें पुनःवृद्धि की क्षमता नहीं होती। हरे चारे के लिए मक्का की कटाई बोने के 70–80 दिन बाद मादा मंजरिया निकलने के बाद करते हैं। साइलेज के लिए मक्का की कटाई दाना पड़ने की अवस्था में करनी चाहिए। इस अवस्था में चारे में शुष्क पदार्थ तथा शर्करा की मात्रा अधिक होती है। मक्का के चारे की पैदावार 35–40 टन प्रति हेक्टेयर होती है तथा अच्छे प्रबंधन एवं सिंचाई की व्यवस्था होने पर चारे की उपज 40–50 टन प्रति हेक्टेयर तक हो जाती है।

फसल–चक्र : चारे के लिए बोई गई खरीफ मक्का के बाद बरसीम, रिजका, जई, गेहूँ, जौ इत्यादि फसलों को बोया जा सकता है। इसके बाद दलहन फसल की बुवाई करने से भूमि की उर्वरता बनी रहती है। मक्का की चारे वाली फसल को मिश्रित फसल के रूप में भी बोया जा सकता है। चंवला, मूंग या ग्वार को मक्का के साथ बुवाई करने से चारे की पौष्टिकता में वृद्धि होती है।

बाजरा (*पेनीसेटम टाईफोइडस*)

शुष्क क्षेत्र के लिए बाजरा चारे एवं दाने हेतु महत्वपूर्ण फसल है। बाजरे के चारे में क्रूड प्रोटीन की मात्रा 10 से 15 प्रतिशत तथा चारे की पाचनशीलता 55 से 60 प्रतिशत होती है। बीज की अवस्था में फसल काटने पर चारे की प्रोटीन तथा अन्य पोषक तत्वों की मात्रा लगभग आधी रह जाती है। दाना निकालने के बाद कड़बी को चारे के रूप में भी प्रयोग करते हैं।

जलवायु तथा भूमि : बाजरा के लिए ऊष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है। इसे वर्षा या ग्रीष्म ऋतु तथा हल्की मृदा में आसानी से उगाया जा सकता है एवं 30–35° सेल्सियस तापमान पर इसकी वृद्धि अच्छी होती है। कम तापमान होने पर पौधों की वृद्धि कम हो जाती है। गर्मियों में सिंचाई उपलब्ध होने पर हरे चारे की अच्छी पैदावार की जा सकती है।

खेत की तैयारी : खेत तैयार करने के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से या तवेदार हल से करें। इसके बाद एक या दो जुताई कल्टीवेटर या हैरो से करके पाटा लगाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए। अन्तिम जुताई से पहले 10 से 15 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद या कम्पोस्ट को खेत में डालने से पपड़ी बनने की सम्भावना कम रहती है, अंकुरण अच्छा होता है तथा भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ जाती है। भूमिगत कीड़ों जैसे दीमक, सफेद लट, कातरा आदि की रोकथाम के लिए बुवाई से पूर्व अन्तिम जुताई के समय क्यूनॉलफास (1.5 प्रतिशत चूर्ण) 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में डालकर अच्छी तरह से मिला देना चाहिए।

बुवाई का समय : खरीफ ऋतु में चारा प्राप्त करने के लिए जून के अन्तिम सप्ताह से मध्य जुलाई तक का समय बुवाई के लिए सर्वोत्तम है। देर से बुवाई करने पर उपज में कमी हो जाती है। सिंचित क्षेत्रों में गर्मियों में चारा प्राप्त करने हेतु मार्च–अप्रैल का समय बुवाई के लिए उत्तम रहता है। असिंचित स्थानों पर इसकी बुवाई मानसून पर निर्भर करती है।

बीज की मात्रा : चारे की फसल के लिए 10 से 12 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहता है।

बुवाई की विधि : बाजरे की बुवाई पंक्तियों में करनी चाहिए, जिससे खरपतवार नियंत्रण और निराई–गुड़ाई में आसानी रहती है, और पौधों की बढ़वार अच्छी होती है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25 से 30 से.मी. रखते हैं।

बीज उपचार : बीज को 2 से 5 ग्राम एग्रोसान जी.एन. नामक दवा से प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित कर बोएं। इसके अलावा एजोटोबेक्टर नामक जीवाणु से उपचारित करें, इससे पौधों की बढ़वार अच्छी होती है।

खाद व उर्वरक : 10 से 15 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की अच्छी तरह सड़ी हुई खाद या कम्पोस्ट खेत में बुवाई से 10 से 15 दिन पूर्व अंतिम जुताई के समय खेत में मिला देना चाहिए। इसके अतिरिक्त 40 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 20 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। नत्रजन की आधी व फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय खेत में डालना चाहिए। नत्रजन की शेष मात्रा बुवाई के 25–30 दिन बाद डालना चाहिए।

उन्नत किस्में : चारे की किस्में दाने की किस्मों से थोड़ी भिन्न होती हैं। इन किस्मों में वानस्पतिक वृद्धि अधिक एवं दाने की पैदावार अपेक्षाकृत कम होती है। कुछ दाने वाली किस्मों को भी चारे के लिए उगाया जा सकता है। राज बाजरा चरी–2, जायन्ट बाजरा, एमपी–171, अविका बाजरा चरी, आदि चारे के लिए उपयुक्त किस्में हैं। इसके अलावा रिजका बाजरी किस्म बहुकटाई के लिए प्रचलित है।

खरपतवार नियंत्रण : चारे के लिए बाजरे में खरपतवार नियंत्रण की आवश्यकता नहीं पड़ती, फिर भी बुवाई के 25–30 दिन बाद निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों को निकाल देने से बाजरे की वृद्धि अच्छी होती है तथा कल्लों का विकास भी ज्यादा होता है। खरपतवारों के नियंत्रण हेतु रासायनिक दवाओं का प्रयोग भी किया जा सकता है। इसके लिए एट्राजीन 0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को 600 से 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से कटाई के बाद और अंकुरण से पूर्व खेत में छिड़काव करें।

कटाई प्रबंध : बाजरे की चारे वाली फसल से प्रायः दो कटाई लेते हैं। पहली कटाई बुवाई से 50–55 दिन बाद करनी चाहिए। फसल काटते समय इस बात का ध्यान रहे कि पौधों को भूमि से 10 से.मी. की ऊँचाई पर काटें। बाजरे से पुनःवृद्धि मुकुट तथा तने के निचले हिस्से पर स्थित कलियों द्वारा होती है। अच्छी पुनःवृद्धि होने पर पहली कटाई के 30 से 40 दिन बाद दूसरी कटाई करें। हरे चारे की उपज बाजरे की वृद्धि पर निर्भर करती है। उन्नत विधि से खेती करके लगभग 25 से 35 टन हरा चारा प्रति हेक्टेयर प्राप्त किया जा सकता है।

फसल–चक्र : बाजरे की फसल प्रति वर्ष एक ही खेत में लगातार उगाने से उपज कम हो जाती है। इसलिए प्रत्येक दूसरे वर्ष फलीदार फसलें जैसे ग्वार, चंवला, मूंग, मोठ आदि बोने से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है और अगले वर्ष बाजरे की उपज में भी वृद्धि होती है (चित्र 2)। फलीदार फसलों को बाजरा के साथ अन्तराशस्य के रूप में उगाने से चारे की गुणवत्ता में वृद्धि की जा सकती है। इसके लिए दो पंक्तियों में बाजरा और दो कतारों में फलीदार फसल बोना चाहिए।

चित्र 2 बाजरा के साथ चंवला का अन्तराशस्य

लोबिया (*विगना अंग्यूकुलाटा*)

लोबिया (चंवला) एक दलहनी फसल है। इसकी खेती सिंचित एवं वर्षा आधारित क्षेत्रों में की जाती है। इसको बरसात एवं गर्मी के मौसम में चारे के लिए उगाया जा सकता है (चित्र 3)। दलहनी फसल होने के कारण लोबिया का चारा अधिक पौष्टिक और पाचनशील होता हैं। इसके चारे में 17–20 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन होती है।

जलवायु एवं भूमि : लोबिया को गर्म एवं नम जलवायु की आवश्यकता होती है वृद्धि के लिए 29–34° सेल्सियस तापमान सर्वोत्तम माना जाता है एवं अंकुरण के लिए 15° सेल्सियस से अधिक तापमान होना चाहिए। अत्यधिक वर्षा एवं खेत में पानी भरने से फसल कमजोर हो जाती है। अच्छी जल निकास वाली दोमट, बलुई दोमट या हल्की भूमि लोबिया की खेती के लिए अच्छी मानी जाती है।

उन्नत किस्में : चारे वाले लोबिया की किस्में दाने वाली किस्मों से भिन्न होती हैं। छारोड़ी–1, बुंदेल लोबिया–1, बुंदेल लोबिया–2, एचएफसी 42–1, सी–88, सी–152 आदि किस्मों को चारे के लिए उगाया जाता है।

चित्र 3 चारे के लिए लोबिया

खेत की तैयारी: खेत की दो या तीन बार कल्टीवेटर, देशी हल या हेरो से जुताई करें तथा पाटा लगाकर समतल कर लेवें। यदि खेत में खरपतवार या पिछली फसल के अवशेष हों तो उन्हें अच्छी तरह से जुताई करके खेत में दबा देना चाहिए।

बीज एवं बुवाई: लोबिया की बुवाई प्रायः दो ऋतुओं में की जाती है। खरीफ में वर्षा शुरू होने पर जून–जुलाई में इसकी बुवाई करते है तथा सिंचित क्षेत्रों में इसे ग्रीष्म ऋतु की फसल के लिए मार्च–अप्रैल में बोया जाता है। देर से चारा प्राप्त करने के लिए इसे अगस्त में भी बोया जा सकता है। चारे के लिए सकल फसल हेतु 25–30 कि.ग्रा. बीज एक हेक्टेयर के लिए आवश्यक होता है तथा मिश्रित खेती में बीज दर कम रखते हैं। बुवाई पंक्तियों में करनी चाहिए जिससे निराई–गुडाई में आसानी हो। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25–30 से.मी. रखते हैं। बुवाई से पूर्व बीजों को जीवाणु कल्चर से उपचारित करने से फसल की वृद्धि अच्छी होती है।

खाद एवं उर्वरक: दलहनी फसल होने के कारण इसके अंकुरण के कुछ दिनों बाद राइजोबियम जीवाणु द्वारा नत्रजन का यौगिकरण शुरू हो जाता है। इसलिए इसको नत्रजन की आवश्यकता कम होती है। परन्तु अच्छी वृद्धि के लिए 20–25 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है इसके अलावा 40 कि.ग्रा. फास्फोरस की भी जरूरत होती है। इसलिए बुवाई के समय नत्रजन एवं फास्फोरस की पूरी मात्रा खेत में उर कर देनी चाहिए। कम एवं मध्यम मात्रा वाली भूमियों में उचित मात्रा में खाद एवं उर्वरक डालने की आवश्यकता होती है। रेतीली एवं हल्की भूमियों में कार्बनिक पदार्थ कम होता है इसलिए बुवाई के समय 8–10 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की अच्छी सड़ी खाद या कम्पोस्ट का प्रयोग करना चाहिए। जैविक खाद

प्रयोग करने से भूमि में जलधारण क्षमता बढ़ती है और पौधों की वृद्धि अच्छी होती है तथा चारे की गुणवत्ता में भी बढ़ोत्तरी होती है।

सिंचाई : खरीफ की फसल में प्रायः सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है परन्तु 15–20 दिन तक वर्षा न होने पर सिंचाई अवश्य करें और गर्मियों में 10–12 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करें। इस प्रकार देर से बोई गई ;अगस्त) फसल को भी अक्टूबर या नवम्बर में कम से कम 1–2 सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। खरीफ में फसल उगाने के लिए खेत में जल निकास का उचित प्रबन्ध आवश्यक है। खेत में पानी भरने पर प्रायः जड़ गलन रोग द्वारा पौधे मर जाते हैं।

निराई–गुड़ाई : पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए खेत में खरपतवारों का नियंत्रण अति आवश्यक है। बुवाई के 20–25 दिन बाद एक निराई–गुड़ाई करने से अवांछित पौधों को निकाला जा सकता है तथा मृदा की ऊपरी पपड़ी टूटने से वायु संचार में मृदा जल का संरक्षण हो जाता है, जिससे पौधों में वृद्धि अच्छी होती है। आवश्यकता पड़ने पर 15–20 दिन बाद दूसरी निराई–गुड़ाई करनी चाहिए।

कटाई प्रबन्ध व उपज : लोबिया की फसल में एक ही कटाई की जा सकती है, जब फसल में 50 प्रतिशत पौधे पुष्पावस्था में पहुँच जाऐ या फसल 50 से 60 दिन की हो जाए तब कटाई करनी चाहिए। इस तरह उन्नत तकनीक से उगाई गई फसल से प्रति हेक्टेयर लगभग 25 से 30 टन तक हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है।

फसल–चक्र : यह फसल अन्य खरीफ फसलों जैसेः– मक्का, ज्वार, बाजरा, आदि के साथ मिश्रण या अन्तःशस्य के रूप में बोई जा सकती है। इन चारा फसलों के साथ लोबिया को बोने से चारे की पौष्टिकता बढ़ जाती है तथा भूमि की उर्वरता में भी सुधार होता है। जायद ऋतु में भी लोबिया को चारे के लिए बोया जा सकता है।

ग्वार (*साइमोपसीस टेट्रागोनोलोबा*)

ग्वार एक बहुउपयोगी, सूखा–प्रतिरोधी फलीदार फसल है। इसका उपयोग बीज, सब्जी, हरा चारा एवं हरी खाद के रूप में किया जाता है। शुष्क क्षेत्र में हरे चारे के लिए ग्वार की खेती की जा सकती है (चित्र 4)। इसको अन्य चारा फसलों के साथ मिश्रित खेती के रूप में भी उगाया जा सकता है। ग्वार का चारा पौष्टिक होता है, इसमें प्रोटीन की प्रचुर मात्रा होती है। हरे चारे में लगभग 16 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन एवं 60 प्रतिशत पाचक शुष्क पदार्थ पाया जाता है। चारे में पोषक तत्व परिपक्वता की अवस्था के साथ बदलते रहते हैं। पुष्पन की अवस्था पर पोषक तत्वों की मात्रा अधिकतम होती है। चारे के अलावा ग्वार के उबले बीज भी पशुओं को खिलाये जाते हैं। ग्वार के बीज में गम निकालने के बाद बचे हुए हिस्से जिसको ''ग्वार आहार'' कहते हैं, पशुओं को खिलाया जाता है, जिसमें लगभग 42 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन की मात्रा पायी जाती है। फलियों से बीज निकालने के बाद बची फलकटी को भी पशु चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है।

चित्र 4 किसान के खेत पर ग्वार की खेती का प्रदर्शन

जलवायु एवं भूमि : ग्वार ऊष्ण कटिबन्धीय शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों की एक महत्वपूर्ण फसल है। अच्छी वृद्धि के लिए 30–35° सेल्सियस तापमान अच्छा रहता है। पानी की अधिकता व खेत में पानी रूकने की स्थिति में ग्वार के पौधे मर जाते हैं। ग्वार की अच्छी वृद्धि के लिए 400 से 500 मि.मी. वर्षा होना आवश्यक है। वर्षा कम होने पर फसल उत्पादन कम होता है। इसकी खेती के लिए बलुई–दोमट मिट्टी अच्छी रहती है। ग्वार की फसल लवणता के प्रति संवेदनशील होती है।

उन्नत किस्में : जिन किस्मों में वानस्पतिक वृद्धि अच्छी होती है उन्हें चारे के लिए उपयोग कर सकते हैं। पौष्टिक एवं अधिक चारा प्राप्त करने के लिए उन्नत किस्में जैसे एफएस–277, एफएचजी–119, एचएफजी–156, बुंदेल ग्वार–1, बुंदेल ग्वार–2 आदि का उपयोग कर सकते हैं।

फसल पद्धति : ग्वार को अकेले या अन्य फसलों के मिश्रण में भी उगाया जा सकता है। चारे के लिए इसे बाजरा, ज्वार, खरीफ की अन्य फसलों के साथ मिला कर बोया जाता है। बारानी क्षेत्रों में ग्वार व बाजरे को क्रमवार चक्र में उगाया जा सकता है। सिंचित क्षेत्रों में ग्वार के बाद रिजका, जई, बरसीम, जौ आदि फसलें उगाई जा सकती हैं तथा रबी की फसल काटने के बाद फिर ग्वार की बुवाई कर सकते हैं।

खेत की तैयारी : ग्वार की अधिकतर खेती हल्की भूमि में करते हैं इसलिए खेत की एक या दो जुताई, देशी हल, कल्टीवेटर या हेरो से करने के पश्चात् पाटा चलाकर समतल कर लेना चाहिए। बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए, इससे बीजों का अंकुरण अच्छा होता है। वर्षा होने से पूर्व यदि खेत को हैरो करके छोड़ दिया जाये तो मानसून की पहली वर्षा का जल भूमि में अच्छी तरह से वितरित हो जाता है।

बीज एवं बुवाई : ग्वार की बुवाई अधिकतर खरीफ में करते हैं और सिंचित क्षेत्र में जायद फसल की बुवाई की जाती है। खरीफ में फसल के लिए जुलाई तथा जायद के लिए मार्च–अप्रैल के महीने बुवाई के लिए सर्वोत्तम है। चारे की फसल के लिए बीज की मात्रा ज्यादा रखी जाती है अतः बीज दर 30–35 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर रखनी चाहिए और फसल को 25–30 से.मी. की दूरी पर पंक्तियों में बोना चाहिए। बुवाई से पूर्व ग्वार के बीजों को राइजोबियम कल्चर से उपचारित कर लेना चाहिए जिससे नत्रजन का स्थिरीकरण अच्छा होता है। 10 कि.ग्रा. बीज के लिए 250 ग्राम राइजोबियम कल्चर का उपयोग करें, इसके अलावा अंगमारी रोग की रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व प्रति कि.ग्रा. बीज को 250 पीपीएम एग्रीमाईसीन या 200 पीपीएम स्ट्रेप्टोसाईक्लिन के (0.02 प्रतिशत) घोल में 3 घण्टे भिगोकर उपचारित करें। जड़ गलन रोग नियंत्रण हेतु कार्बेन्डेजिम या टोप्सिन 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें।

खाद और उर्वरक : ग्वार अन्य दलहनी फसलों की तरह नत्रजन स्थिरीकरण की क्षमता रखती है, इसलिए नत्रजन की आवश्यकता कम होती है परन्तु फसल की अच्छी शुरूआत के लिए नत्रजन उर्वरक देने की आवश्यकता पड़ती है। बुवाई के समय खेत में 20–25 कि.ग्रा. नत्रजन तथा 40–50 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। फसल की अच्छी वानस्पतिक वृद्धि के लिए बुवाई से 10–15 दिन पूर्व 8–10 टन गोबर की अच्छी तरह सड़ी हुई या कम्पोस्ट खाद को खेत में डालना चाहिए।

सिंचाई प्रबन्ध : खरीफ में बोई गई फसल को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। गहरा जड़ तंत्र होने के कारण फसल सूखा सहन कर सकती है, परन्तु लम्बे समय तक वर्षा न होने पर सिंचाई करनी चाहिए। देर से बोई गई फसल को एक या दो सिंचाई की आवश्यकता पडती है। जायद ऋतु में चारे की फसल को 15–20 दिन के अन्तर पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

निराई–गुड़ाई : खरपतवार नियन्त्रण और फसल की अच्छी वृद्धि के लिए कम से कम एक या दो बार निराई–गुड़ाई करना लाभप्रद होता है। पहली गुड़ाई के लगभग 20–30 दिन बाद तथा आवश्यकता पड़ने पर 20 दिन बाद दूसरी निराई–गुड़ाई करें। खरपतवार नियन्त्रण के लिए शाकनाशियों का छिड़काव कर सकते हैं, इसके लिए बेसालिन नामक रसायन के 1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व खेत की ऊपरी सतह में मिला देना चाहिए।

कटाई एवं उपज : अधिक एवं पौष्टिक चारे की पैदावार के लिए ग्वार को पुष्पावस्था या 50–60 प्रतिशत फली बनने की अवस्था पर काट लेना चाहिए। जल्दी काटने पर उपज कम और पौष्टिकता अधिक व देर से काटने पर पौष्टिकता कम रहती है। ग्वार से चारे की एक ही कटाई मिलती है। इसकी हरे चारे की उपज 25–30 टन प्रति हेक्टेयर तक होती है।

बाजरा नेपियर संकर घास (*पेनीसेटम परप्युरियम x पेनीसेटम ग्लुकम*)

नेपियर घास को बाजरा के साथ क्रॉस करके बाजरा नेपियर संकर घास विकसित की गई है। यह बहुकटाई वाली फसल है। इसको उन क्षेत्रों में जहां पर सिंचाई की सुविधा हो वर्ष भर हरा चारा प्राप्त करने के लिए उगाया जाता है (चित्र 5)। इसकी खेती के लिए 800–1000 मि.मी. पानी की आवश्यकता होती है। इसका जड़तंत्र गहरा होता है तथा वृद्धि तेज होती है। इसकी पत्तियाँ काफी मुलायम एवं हरी होती हैं। इसमें लगभग 10.2 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन एवं 30.5 प्रतिशत क्रूड फाइबर होता है। फसल की एक बार रोपाई करने के बाद तीन–चार साल तक चारा उपलब्ध होता है। चारे की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए दलहनी फसलों जैसे चंवला, ग्वार, रिजका आदि को इसके साथ मिलाकर बोया जा सकता है।

जलवायु और भूमि: बाजरा नेपियर संकर घास ऊष्ण जलवायु की फसल है। इसकी वृद्धि के लिए अधिक तापमान की आवश्यकता होती है। 31 सेल्सियस तापमान पर पौधों की वृद्धि अच्छी होती है। इसको सभी प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है। फिर भी दोमट एवं बलुई दोमट मिट्टी अच्छी मानी जाती है। उचित जल निकास वाली भारी मृदा में भी इसकी बुवाई की जा सकती है। भूमि का पी. एच. मान 5 से 8 तक उपयुक्त रहता है।

उन्नत किस्में: सीओ–1, सीओ–2, सीओ–3, सीओ–4, पूसा जायंट, एनबी –21, आईजीएफआरआई–5 आदि मुख्य किस्में हैं।

चित्र 5 चारे के लिए नेपियर बाजरा हाइब्रिड

खेत की तैयारी: इसकी खेती के लिए खेत की मिट्टी को भुरभुरी बनाना आवश्यक है। एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से या तवेदार हल से जुताई करनी चाहिए और दो बार हैरो चलाकर पाटा लगााने से खेत पूर्ण रूप से तैयार हो जाता है। दीमक की रोकथाम के लिए अन्तिम जुताई से पूर्व 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण को खेत में प्रयोग करना चाहिए।

बीज एवं बुवाई: जिन स्थानों पर सिंचाई के साधन उपलब्ध हों वहाँ फरवरी से जुलाई तक रोपाई की जा सकती है। इसके लिए जड़दार कल्लों या तीन गाठों वाले तने के टुकड़ों को खेत में लगाया जाता है। तने के टुकड़ों को खेत में 45 के कोण पर इस प्रकार लगते हैं कि आधा भाग भूमि के अंदर एवं आधा भाग बाहर रहे। जड़दार कल्लों द्वारा लगाई गई फसल अच्छी होती है। एक हेक्टेयर के लिए 35000–40000 जड़दार कल्लों या तने के टुकड़ों की आवश्यकता होती है। इन टुकड़ों को 75–100 से.मी. की दूरी पर कतार में लगाया जाता है।

खाद एवं उर्वरक: गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद या कम्पोस्ट 10–15 टन प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के 15–20 दिन पूर्व खेत में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। इसके अतिरिक्त 50 कि.ग्रा. नत्रजन, 50 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 40 कि.ग्रा. पोटाश बुवाई के समय तथा प्रत्येक कटाई के बाद 50 कि.ग्रा. नत्रजन छिटक कर प्रयोग करें।

सिंचाई प्रबंधन: वर्षा ऋतु में बोई गई फसल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु लम्बे समय तक वर्षा न होने की स्थिति में सिंचाई की जरूरत पड़ सकती है। ग्रीष्म कालीन फसल में 8–10 दिन के अंतराल पर तथा सर्दियों में 12–15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए।

फसल सुरक्षा: वर्षा कालीन फसल में खरपतवार की समस्या अधिक रहती है। इसलिए बुवाई के 15–20 दिन उपरांत निराई–गुड़ाई करें। इसके अलावा आवश्यकता पड़ने पर समय–समय पर निराई–गुड़ाई करनी चाहिए ताकि भूमि में नमी बनी रहे और वायु संचार अच्छा रहे जिससे पौधों की बढ़वार अच्छी होती हैं।

कटाई: पहली कटाई 70–80 दिन बाद तथा अगली कटाइयाँ 40–50 दिन के अंतराल पर करें। इस तरह 5–6 कटाइयों में हरे चारे की कुल औसत पैदावार 180 से 200 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त की जा सकती है।

फसल–चक्र: सर्दियों में फसल सुषुप्तावस्था में आ जाती है जिससे पैदावार नहीं मिलती । अतः ऐसे समय भूमि के समुचित उपयोग एवं चारा उत्पादन हेतु फसल की कतारों के बीच में मौसम के अनुसार दलहनी एवं अन्य चारा फसलों जैसे रिजका, बरसीम, जई, जौ, चंवला इत्यादि को बोया जा सकता है। नेपियर को अधिक नत्रजन की आवश्यकता होती है, इसलिए इसके साथ मिश्रित फसल के रूप में दलहन फसल को उगाना चाहिए जिससे भूमि की उर्वरता बनी रहे तथा चारे की पौष्टिकता में भी वृद्धि हो।

3. रबी चारा फसलों की उन्नत खेती

रबी में मुख्य रूप से बरसीम, रिजका, जई एवं जौ की फसल को हरे चारे के लिए उगाते हैं। इसके अलावा फोडर बीट को भी रबी में चारा के लिए उगाया जा सकता है। बरसीम, रिजका एवं फोडर बीट की फसलों के लिए अधिक पानी की आवश्यकता होती है, जबकि जई एवं जौ को कम पानी में भी उगाया जा सकता है। इसके अलावा जौ एवं फोडर बीट की खेती क्षारीय एवं लवणीय भूमियों पर या खारे पानी से भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। उपरोक्त चारा फसलों की निम्नलिखित उन्नत विधियाँ अपनाकर अधिक एवं पौष्टिक चारा प्राप्त किया जा सकता है।

रिजका (*मेडिकागो सटीवा*)

रिजका रबी चारे की एक महत्वपूर्ण फसल है जिसको खरीफ फसलों की कटाई के बाद बोया जाता है। इसका चारा स्वादिष्ट एवं पौष्टिक होता है और शुष्क पदार्थ के आधार पर इसमें 20–25 प्रतिशत प्रोटीन होती है। रिजका के चारे में कैल्शियम का बाहुल्य होता है एवं चारे की पाचकता लगभग 65 प्रतिशत तक होती है। भारत में रिजके की खेती लगभग सभी स्थानों पर जहाँ सिंचाई की सुविधा हो या भूमि में नमी की मात्रा अच्छी हो की जाती है।

जलवायु और भूमि : इस फसल के लिए अच्छी जल–धारण शक्ति वाली दोमट तथा मटियार दोमट भारी मिट्टी सर्वोत्तम मानी जाती है। हल्की क्षारीय भूमि में रिजका की खेती की जा सकती है परन्तु बहुत क्षारीय और जल–भराव वाली जमीन में इसकी वृद्धि कम हो जाती है। अर्द्ध–शुष्क क्षेत्र में यह फसल गर्मी एवं ठण्ड के प्रति सहनशील है। कई स्थानों पर इसे बहुवर्षीय फसल के रूप में भी उगाते हैं। बहुवर्षीय रिजका को संकर नेपियर घास के मिश्रण में भी बोया जाता है। रिजका को जई, सरसों और बरसीम के साथ मिश्रण के रूप में भी उगाया जा सकता है।

उन्नत किस्में : भारत में रिजका की उन्नत व अधिक उपज देने वाली कई एक व बहुवर्षीय किस्में उपलब्ध हैं। टाइप–9 एवं आनन्द–2 किस्में लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत के लिए अनुमोदित की गई हैं। इसके अलावा आनन्द–1, 3 व आर एल–88 आदि उन्नत किस्मों को भी अधिक चारे के लिए उगाया जा सकता है। बहुवर्षीय रिजके के लिए कुछ स्थानीय किस्मों को भी बोया जाता है। बिलाड़ा लोकल रिजका और अलमदार–51 पश्चिमी राजस्थान के लिए उपयुक्त किस्में हैं।

खेत की तैयारी : बुवाई से पूर्व खेत को अच्छी तरह से तैयार करना आवश्यक है। इसके लिए खरीफ फसल की कटाई के बाद एक गहरी जुताई व 2–3 उथली जुताईयाँ हैरो से करके पाटा चलाकर जमीन को समतल कर लेना चाहिए। दीमक व अन्य भूमिगत कीटों की समस्या होने पर इनकी रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व अन्तिम जुताई के समय क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में डालकर अच्छी तरह से मिला देना चाहिए।

बीज एवं बुवाई : बुवाई के लिए अमरबेल रहित प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें। एक हेक्टेयर के लिए 20–25 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। बोने से पूर्व बीजों को राइजोबियम जीवाणु से उपचारित कर लें। हल्की भूमि में रिजका को प्रायः कूंडो में बोया जाता है। भारी भूमि में इसकी बुवाई मेड़ों पर करनी चाहिए। दोमट भूमि मे इसकी बुवाई समतल क्यारियों में छिड़काव विधि से करते हैं। बहुवर्षीय रिजका उन सभी स्थानों पर उगाया जाता है जहाँ वर्षा कम होती है व जल निकास की अच्छी सुविधा होती है। ऐसे स्थानों पर रिजका की बुवाई 20–25 से.मी. दूरी पर कतारों में करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : बुवाई से 10–15 दिन पूर्व 10 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद को खेत में मिला दें। रिजका की अच्छी वृद्धि के लिए 20–25 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 60 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है।

सिंचाई प्रबंधन : गहरी एवं विकसित जड़ों वाली फसल होने के कारण रिजका असिंचित क्षेत्रों में नमी की खोज में अपनी जड़ों का विकास 3 मीटर की गहराई तक कर सकती है। शुष्क स्थानों पर रिजका को सिंचाई की सुविधानुसार ही उगाते हैं। इसको प्रति वर्ष 6–8 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। भारी मिट्टी में इसे प्रारम्भिक अवस्था में 1–2 सिंचाई की जरूरत होती है। भूमि में नमी की कमी होने पर प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करें। वर्षा ऋतु में पौधे सुषुप्तावस्था मे पहुँच जाते हैं, इसलिए इस समय उचित जल निकास का प्रबंध होना चाहिए। कम पानी की उपलब्धता में फव्वारा विधि द्वारा सिंचाई करके रिजके की खेती की जा सकती है (चित्र 6)।

चित्र 6 फव्वारा विधि द्वारा सिंचाई से रिजके की खेती

खरपतवार नियंत्रण : अंकुरण के बाद पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है। बुवाई के 15–20 दिन उपरांत निराई–गुड़ाई करने से रिजका के पौधों की संतोषजनक वृद्धि होती है, साथ ही

खरपतवार नियंत्रण भी हो जाता है। रिजके में अमरबेल का नियंत्रण करना अति आवश्यक है इसके लिए प्रमाणित बीजों का उपयोग करें तथा अमरबेल को पुष्पावस्था में ही खोदकर उखाड़ लें और सावधानीपूर्वक खेत के बाहर जला दें। जिस खेत मे एक बार अमरबेल का प्रकोप हो जाए उसमे 4–5 वर्ष तक रिजके की बुवाई न करें।

कटाई : रिजका की प्रथम कटाई, बुवाई के 50–60 दिन बाद या उस अवस्था में की जानी चाहिए जब लगभग 10 प्रतिशत पौधे पुष्पावस्था में आ जाऐं। प्रथम कटाई के 30 दिन बाद दूसरी कटाई करनी चाहिए तथा इसके पश्चात अन्य कटाईयाँ 30 दिन के अन्तराल पर करें। इस प्रकार 6–8 कटाईयों से हरे चारे की उपज सिंचित स्थानों पर 80 से 90 टन प्रति हेक्टेयर तथा असिंचित स्थानों पर 60–70 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो सकती है। भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर द्वारा किसानों के खेतों पर किये गये तकनीकी प्रदर्शन के परिणाम दर्शाते हैं कि उन्नत तकनीक अपनाने से रिजके के हरे चारे (79.6 टन प्रति हेक्टेयर) का उत्पादन कृषक विधि (71.7 टन प्रति हेक्टेयर) की तुलना में 11 प्रतिशत बढ़ गया।

बरसीम (*ट्राईफोलियम एलेक्सएन्ड्रिनम*)

रबी की चारे वाली फसलों में बरसीम एक लोकप्रिय फसल है। इसका चारा अत्यन्त पौष्टिक एवं स्वादिष्ट होता है। इसमें प्रोटीन की औसत मात्रा 20–21 प्रतिशत होती है। बरसीम के पौधे पत्तीदार एवं मुलायम होते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है तथा देर से कटाई करने पर पौष्टिकता में कमी आ जाती है।

जलवायु और भूमि : यह फसल शीतोष्ण एवं कम गर्मी वाले क्षेत्रों में उगाई जाती है। बरसीम की खेती सभी प्रकार की भूमि पर की जाती है, परन्तु सामान्य, भारी दोमट मिट्टी जिसकी जलधारण क्षमता अधिक होती है बरसीम की खेती के लिए उत्तम मानी जाती है। यह फसल क्षारीय भूमि पर भी उगाई जा सकती है, परन्तु भूमि के पी. एच. का मान 8 से अधिक नहीं होना चाहिए।

उन्नत किस्में : बरसीम की मस्कावी, बीएल–1 और वरदान अधिक उपज देने वाली किस्में हैं। वरदान शीघ्र बढ़ने वाली और पाला सहन करने वाली किस्म है, परन्तु बीएल–1 लम्बे समय तक चारा देने वाली किस्म है।

खेत की तैयारी : खरीफ फसल की कटाई के बाद खेत से खरपतवार व फसलों के अन्य अवशिष्टों को निकाल कर साफ कर लेना चाहिए। एक गहरी जुताई एवं 1–2 बार कल्टीवेटर या हैरो से जुताई करके पाटा चलाकर मिट्टी को भुरभुरी एवं खेत को समतल बना लेना चाहिए।

बीज एवं बुवाई : बरसीम की बुवाई के लिए अक्टूबर का महीना उत्तम होता है। बरसीम एक फलीदार फसल है इसलिए बुवाई से पहले बीज को राइजोबियम जीवाणु से उपचारित करके बोयें। यदि यह टीका उपलब्ध न हो तो जिस खेत में बरसीम पहले बोयी जा चुकी है उस खेत से मिट्टी लाकर पूरे खेत में बिखेर दें। बोने से

पहले बीज को 1 प्रतिशत नमक के घोल में डालकर ऊपर तैरने वाले हल्के बीजों को निकाल दें। बुवाई के लिए 20–25 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की दर से तैयार खेत में बिखेर कर 1 से 1.5 से.मी. की गहराई में बुवाई करें। बीज के साथ प्रायः मिट्टी मिलाकर बुवाई करनी चाहिए। इससे बीज का छिड़काव बराबर होता है। इसके अलावा बरसीम को खड़े पानी में एक समान बिखेर कर भी बुवाई की जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक : बरसीम की वृद्धि एवं हरे चारे की अच्छी पैदावार के लिए 10 से 15 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की अच्छी तरह से सड़ी हुई या कम्पोस्ट खाद को खेत में मिलायें। 20–25 कि.ग्रा. नत्रजन और 70–80 कि. ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के समय डालना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण : बरसीम के खेत में कासनी (चिकोरी) नामक खरपतवार की मुख्य समस्या होती है। कासनी अतिक्रमण के दो स्त्रोत हैं, भूमि तथा बीज। बीज को 15–20 प्रतिशत नमक के घोल में निकालने व साफ करने से भी कासनी नियंत्रण में सहयोग मिलता है। बोने के समय नमक के घोल में बीज को डालकर हिलाते हैं। कासनी के बीज हल्के होने से ऊपर तैरने लगते हैं उन्हें निकाल देना चाहिए। यह क्रिया तीन–चार बार करने से बरसीम के बीज लगभग कासनी के बीज रहित हो जाते हैं। बोने से पहले बरसीम के बीज को छाया में फैलाकर भुरभुरा कर देना चाहिए। पौधों की अच्छी वृद्धि एवं चारे की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए के लिए खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है। बुवाई के 20–25 दिन बाद तथा प्रत्येक कटाई के बाद निराई–गुड़ाई करके अवांछित पौधे मुख्यतः कासनी के पौधों को बाहर निकाल देना चाहिए।

सिंचाई प्रबंध : बरसीम की सफल खेती के लिए सिंचाई तथा जल निकास की पर्याप्त व्यवस्था आवश्यक है। जहाँ कहीं खेत में पानी भरकर बुवाई की जाती है वहाँ बुवाई के 4–5 दिन बाद दूसरी सिंचाई करनी चाहिए। शीतकाल में सिंचाईयाँ 15–20 दिनों के अन्तर पर करते रहना चाहिए। मार्च माह के बाद तापमान बढ़ने के कारण पौधों व भूमि द्वारा जल शोषण की क्रिया में वृद्धि हो जाती है। अतः सिंचाईयों के मध्य केवल 12–15 दिन का अंतर रखना चाहिए। इस प्रकार बरसीम के संपूर्ण जीवन काल में 12–15 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। फसल की प्रत्येक कटाई के बाद अनिवार्य रूप से सिंचाई करना, अच्छी पुनःवृद्धि तथा उपज के लिए लाभप्रद है। सिंचाई के अतिरिक्त बरसीम की फसल में जल निकास का उत्तम प्रबंध भी आवश्यक है। इसके लिए खेत का समतल होना और आवश्यकतानुसार सिंचाई करना जरूरी है। प्रत्येक सिंचाई में पानी की मात्रा 5–6 से.मी. की होनी चाहिए।

कटाई : बरसीम बहुकटाई वाली चारा फसल है। इसकी प्रथम कटाई पौधों के पूर्णरूप से स्थापित होने के बाद की जानी चाहिए। प्रथम कटाई 50–60 दिन बाद की जाती है इसके बाद अन्य कटाईयाँ 30–35 दिन के अन्तर पर करते रहना चाहिए। कटाई के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पौधे जमीन की सतह से कम से कम 10 से.मी. की ऊँचाई पर काटे जायें जिससे पुनःवृद्धि में सहायक कलिकाओं को कोई क्षति न हो। बरसीम की फसल से 6–7 कटाईयाँ करके लगभग 100–120 टन हरा चारा प्रति हेक्टेयर प्राप्त किया जा सकता है।

जई (*एवीना सटिवा*)

जई चारे की प्रमुख फसल है, इसका हरा चारा पाचक एवं पौष्टिक होता है। अर्ध–शुष्क क्षेत्रों मे जहां पानी की कमी रहती है वहां जई को हरे चारे के लिए उगाया जा सकता है (चित्र 7)। इसके हरे चारे को साइलेज तथा सुखाकर 'हे' के रूप में पशुओं को खिलाया जा सकता है। इसके चारे में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक एवं प्रोटीन की मात्रा कम होती है। इसलिए इसको दलहनी चारे के साथ मिलाकर खिलाया जा सकता है।

जलवायु और भूमि: जई के लिए हल्की बलुई दोमट और चिकनी मिट्टी अच्छी रहती है। यह हल्की अम्लीय एवं लवणीय भूमि में भी उगाई जा सकती है।

उन्नत किस्में: केंट, ओएस–6, ओएस–7, जेएचओ–851, जेएचओ–822, जेएचओ 99–2, जेएचओ 2000–4 इत्यादि किस्मों से अधिक एवं पौष्टिक चारा प्राप्त किया जा सकता है।

खेत की तैयारी: खेत की अच्छी तैयारी करने के लिये उसकी प्रथम जुताई मिट्टी पलटने वाली हल से करनी चाहिए तथा बाद में 3–4 जुताई कल्टीवेटर या हैरो से करके प्रत्येक जुताई के बाद पाटा चलाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए।

बीज एवं बुवाई: खेत को अच्छी तरह से तैयार करके मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर के समय बुवाई करनी चाहिए। इसकी बुवाई बीज छिड़क कर अथवा पंक्तियों में की जा सकती है। बुवाई के लिये प्रति हेक्टेयर लगभग 70–100 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। बीज को 20–25 से.मी. की दूरी पर बनी कतारों में 4–5 से.मी. की गहराई पर बोना चाहिए। बुवाई से पूर्व बीज को 2 ग्राम मेन्कोजेब नामक फफूंदी नाशक दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर लेना चाहिए।

चित्र 7 जई की उन्नत खेती

खाद एवं उर्वरक : अधिक चारा प्राप्त करने के लिए बुवाई से 10–15 दिन पूर्व खेत मे 10 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद को भली भांति मिला देना चाहिए। दीमक एवं अन्य भूमिगत कीड़ों की रोकथाम के लिए क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत धूल को 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर दर से अन्तिम जुताई के समय मिट्टी मे मिला देवें। जई से अधिक चारा प्राप्त करने के लिए 80 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 40 कि.ग्रा. फास्फोरस की प्रति हेक्टेयर आवश्यकता होती है। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय उर कर डालें तथा नत्रजन की शेष मात्रा पहली कटाई के बाद सिंचाई करते समय डालें।

सिंचाई प्रबंध : जई को पलेवा करके बुवाई करते हैं। पहली सिंचाई बुवाई के लगभग 20–25 दिन बाद करनी चाहिए तथा बाद की सिंचाईयाँ 30 दिन के अंतराल पर करते रहना चाहिए। फसल की कटाई के तुरन्त बाद सिंचाई अवश्य करें। सिंचाई के लिए कम पानी की दशा में फव्वारा विधि से भी सिंचाई कर सकते हैं। भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में किये गये अध्ययन में यह पाया गया, कि जई में 50 मि.मी. कुल वाष्पोर्त्सजन (सी.पी.ई.) पर सिंचाई करके अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है परन्तु कम पानी उपलब्ध होने पर 75 एवं 100 मि.मी. कुल वाष्पोर्त्सजन (सी.पी.ई.) पर सिंचाई करके जई को चारे के लिए उगाया जा सकता है (सारणी 3)।

सारणी 3 जई की उपज पर सिंचाई के विभिन्न स्तरों का प्रभाव (2008-09 से 2010-11 का औसत)

सिंचाई स्तर	उपज (टन प्रति हेक्टेयर)	
	हरा चारा	सूखा चारा
50 मि.मी. कुल वाष्पोर्त्सजन (सी.पी.ई.)	47.0	9.7
75 मि.मी. कुल वाष्पोर्त्सजन (सी.पी.ई.)	42.8	8.4
100 मि.मी. कुल वाष्पोर्त्सजन (सी.पी.ई.)	31.8	6.1

खरपतवार नियंत्रण : जई के फसल के साथ मुख्य रूप से बथुआ, सेंजी, कृष्ण नील, प्याजी आदि खरपतवार उग आते हैं। इनकी रोकथाम के लिए बुवाई के 25–30 दिन बाद एक निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है। इसके बाद जई की बढ़वार अधिक हो जाती है। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार की रोकथाम के लिए 2–4 डी. नामक 0.5 कि.ग्रा. शाकनाशी को 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के 30–35 दिन बाद खड़ी फसल में छिड़काव करना चाहिए।

कटाई : जई की कटाई सर्दी के मौसम मे दो बार की जा सकती है। प्रथम कटाई बुवाई के 50–55 दिन बाद करनी चाहिए। इसके बाद दूसरी कटाई 30–35 दिन बाद करनी चाहिए। कटाई करते समय ध्यान रखना चाहिए कि फसल की कटाई भूमि की सतह से 5–6 से.मी. ऊँचाई से करें जिससे पौधों में पुनः फुटान अधिक एवं शीघ्र हो सके। साइलेज के लिए दानों में दूध बनने की अवस्था मे जई की कटाई करनी चाहिए। इस प्रकार खेती करके जई से लगभग 50 टन प्रति हेक्टेयर हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है।

जौ (*होरडियम वल्गेयर*)

जौ पूरे भारत में उगायी जाने वाली एक महत्वपूर्ण फसल है। राजस्थान में जौ प्रायः सभी जिलों मे बोया जाता है। जौ की खेती मुख्य रूप से दाना पैदा करने के लिए की जाती है तथा इसका भूसा पशुओं को खिलाने के काम में लिया जाता है। जौ को काटकर हरे चारे के रूप में भी पशुओं को खिलाया जाता है। उन्नत विधि द्वारा दाने एवं चारे का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर द्वारा किसानों के खेतों पर किये गये प्रदर्शन के परिणाम दर्शाते हैं कि उन्नत तकनीक अपनाने से जौ के अनाज व चारे का उत्पादन क्रमशः 22 एवं 11 प्रतिशत बढ़ गया (सारणी 4)।

सारणी 4 जौ की उपज पर उन्नत तकनीकी का प्रभाव

उत्पादन विधि	प्रदर्शनों की संख्या	उपज (टन प्रति हेक्टेयर)	
		अनाज	सूखा चारा
कृषक विधि	20	3.02	5.01
उन्नत विधि	20	3.68	5.44

जलवायु और भूमि: जौ की खेती के लिए शीतोष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है एवं इसको सभी प्रकार की भूमियों पर उगाया जा सकता है लेकिन हल्की भूमि अधिक उपयुक्त रहती है। जौ की खेती क्षारीय व लवणीय भूमियों में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है।

उन्नत किस्में: आरडी–2052, आरडी–2552 एवं आरडी–2035 किस्मों से अधिक चारा प्राप्त किया जा सकता है।

खेत की तैयारी: बुवाई से पहले खेत को अच्छी तरह से तैयार कर लेना चाहिए। खरपतवार एवं खरीफ फसलों के अवशेष को निकाल लेवें। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा दो–तीन जुताई कल्टीवेटर या हैरो से करें तथा साथ में पाटा चलाकर खेत को समतल करना चाहिए। दीमक व अन्य भूमिगत कीटों की रोकथाम के लिए बुवाई से पूर्व अन्तिम जुताई के समय क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में डालकर अच्छी तरह से मिला देना चाहिए।

बीज एवं बुवाई: सिंचित क्षेत्रों में जौ की बुवाई अक्टूबर से दिसम्बर तक कर सकते हैं। लेकिन 15 नवम्बर के आस–पास का समय अधिक उपयुक्त रहता है। असिंचित भूमियों पर नमी की उपलब्धता को ध्यान में रखकर अक्टूबर माह में ही इसकी बुवाई कर दें। बुवाइे से पहले जमीन को अच्छी तरह तैयार कर लें। 80–100 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर उपयोग करते हुऐ पक्तियों में 20–25 से.मी. की दूरी पर बुवाई करें। सिंचित क्षेत्रों में 3–5 से.मी. व असिंचित क्षेत्रों में 5–8 से.मी. की गहराई पर बीज बोयें।

खाद एवं उर्वरक : सिंचित क्षेत्रों में 10 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद या कम्पोस्ट को खेत में बुवाई से पहले मिला देवें। इसके अलावा 60 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 40 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से डालें। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय कूंडों में डालें तथा नत्रजन की बची हुई शेष मात्रा पहली कटाई के बाद सिंचाई करते समय डालें। असिंचित क्षेत्र में गोबर की खाद का सीधा प्रयोग नहीं करते, परन्तु अच्छी बढ़वार के लिए 20 कि.ग्रा. नत्रजन व 20 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से डालें।

सिंचाई प्रबंध : जौ के लिए 2–3 सिंचाईयाँ पर्याप्त हैं, जिनमें पहली सिंचाई बुवाई के 25–30 दिन बाद तथा दूसरी एवं तीसरी सिंचाईयाँ 25 दिन के अन्तराल पर करें।

खरपतवार नियंत्रण : जौ को साधारणतया निराई–गुड़ाई की आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु अधिक खरपतवार होने पर बुवाई के 25–30 दिन के बाद एक निराई–गुड़ाई करके उन्हें निकाल देना चाहिए। इसके अलावा अगर जरूरत पड़े तो खरपतवार नियंत्रण के लिए 2–4 डी नामक शाकनाशी की आधा कि. ग्रा. मात्रा को 700–800 लीटर पानी मे घोलकर बुवाई के 30–35 बाद छिड़काव करें।

कटाई : दाने के लिए फसल 120–125 दिन मे पककर तैयार हो जाती है परन्तु हरे चारे के लिए उगाई गई फसल को 60–70 दिन बाद जब पुष्पावस्था पर हो काटकर पशुओं को खिलाया जा सकता है। इस समय काटने से लगभग 30 टन प्रति हेक्टेयर हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है। चारे की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए जौ के साथ मटर या चाइनीज केबेज या जापानी सरसों को मिश्रित करके उगाया जा सकता है। जौ में कार्बोहाइड्रेट पर्याप्त मात्रा में होता है इसलिए यह साइलेज बनाने के लिए भी उपयुक्त है। साइलेज के लिए फसल को दुग्धावस्था पर काटकर संरक्षित करना चाहिये।

फोडर बीट (*बिटा वुल्गारिस*)

फोडर बीट को चारा चुकन्दर भी कहा जाता है। यह एक अधिक उपज देने वाली जमीकन्दीय फसल है (चित्र 8)। जहाँ सिंचाई की सुविधा हो वहाँ इसकी खेती की जाती है। इसको चारा व कन्द दोनों के लिए उगाते हैं। यह एक उच्च ऊर्जायुक्त फसल है जिसमें औसतन 12–13 मेगाज्यूल ऊर्जा प्रति कि.ग्रा. शुष्क भार होती है। इसके कन्द और पत्तियों में क्रूड प्रोटीन क्रमशः 7.4 और 16.5 होती है। इसमें अन्य पोषक तत्व जैसे खनिज लवण एवं विटामिन भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। फोडर बीट की पत्तियां भी पौष्टिक होती हैं जो कि कुल चारा उत्पादन का 15–20 प्रतिशत हिस्सा हैं। पश्चिमी राजस्थान में पशुधन आधारित खेती के लिए यह एक उपयोगी फसल है तथा इसे क्षारीय भूमि में लगाया जा सकता है व खारे पानी का उपयोग भी किया जा सकता है।

जलवायु एवं भूमि : यह शीतोष्ण जलवायु की फसल है। राजस्थान में इसकी खेती सर्दियों में की जाती है। इसे सभी प्रकार की भूमि में लगाया जा सकता है, परन्तु दोमट व बलुई दोमट मिट्टी अच्छी रहती है। भूमि व पानी के खारेपन का भी इस फसल पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि इसकी खेती से भूमि में क्षार की मात्रा कम होती है।

चित्र 8 चारा चुकन्दर की खेती

उन्नत किस्में : बाजार में उपलब्ध संकर किस्में – जेके कुबेर, मोनरो, जोना, जामोन, स्पलेंडिड।

खेत की तैयारी : खेत को पहले मिट्टी पलटने वाले हल या डिस्क हैरो से एक गहरी जुताई करें, फिर क्रॉस हैरो कर कल्टीवेटर के साथ पाटा लगा दें। इसके बाद पीजिया या अन्य साधन द्वारा 50–70 से.मी. की दूरी पर 15 से.मी. ऊँची डोलियाँ बनाएं।

बीज एवं बुवाई : फोडर बीट हेतु प्रति हेक्टेयर एक लाख पौधों की आवश्यकता होती है। इसके लिए 2.0–2.5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। बीज को डोलियों पर 20 से.मी. की दूरी से 2–4 से.मी. गहराई में लगायें। फोडर बीट की डोलियों पर बुवाई करने पर समतल बुवाई की तुलना में अधिक उपज प्राप्त होती है। साथ ही इससे बनने वाली नालियों को सिंचाई करने के काम में लिया जाता है जिससे 20–25 प्रतिशत पानी की भी बचत हो जाती है। अनुपचारित बीज को मैन्कोजेब व थीराम 2–2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके ही बुवाई करें। बुवाई करने के तुरंत बाद सिंचाई करें किन्तु ध्यान रहे की पानी डोली के ऊपर तक न आने पाए और सिर्फ नालियों में ही रहे अन्यथा पपड़ी आ जाएगी व अंकुर बाहर नहीं निकल पायेंगे। राजस्थान में इसकी बुवाई अक्टूबर से दिसम्बर तक की जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक : फोडर बीट की अधिक उत्पादन क्षमता होने के कारण भूमि से अधिक मात्रा में पोषक तत्वों का अवशोषण होता है। इसीलिए फोडर बीट के खेत में हर तीसरे वर्ष खेत की तैयारी के समय 15–20 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की अच्छी तरह सड़ी हुई खाद डालें। इसके अलावा नत्रजन 150 कि.ग्रा., फास्फोरस 75 कि.ग्रा. व पोटाश 150 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर दें। नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई के समय व बची हुई आधी मात्रा को दो बराबर हिस्सों में बुवाई के 30 व 50 दिन पर निराई के पश्चात दें।

निराई–गुड़ाई : फोडर बीट की अधिकतर किस्में 'मल्टीजर्म' हैं यानी एक बीज से एक से अधिक पौधे भी निकल सकते हैं, इसलिए अंकुरण के बीस दिन बाद पौधे से पौधे के बीच की दूरी 20 से.मी. रखें व अतिरिक्त पौधों को उखाड़ दें। चूंकि इस फसल की आरंभिक बढ़वार बहुत धीमी होती है, इसलिए 30 व 50 दिन में निराई अत्यंत आवश्यक है। पचास दिन पर डोलियों पर मिट्टी अवश्य चढ़ा दें।

सिंचाई प्रबंधन : प्रथम सिंचाई बुवाई के तुरंत बाद कर दें इसके बाद मार्च तक 15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें, तत्पश्चात आवश्यकता अनुसार 8–10 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें।

रोग एवं कीट नियंत्रण : वैसे तो इस फसल में रोग व कीड़े कम लगते हैं किन्तु जड़ गलन (*स्क्लेरोटियम रोल्फसी*) व पत्तों को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़ों का कुछ प्रकोप हो सकता है। जड़ गलन की रोकथाम हेतु ट्राईकोडर्मा विरडी 1.25 ग्राम या मैन्कोजेब 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। पत्ते खाने वाले कीड़ों का आर्थिक स्तर तक नुकसान पहुँचने पर 5 प्रतिशत नीम के बीजों की खली के घोल का छिड़काव करें।

कटाई व खुदाई : फोडर बीट के कंदों की खुदाई से 40–50 दिन पहले पत्तियों को 5–7 से.मी. ऊपर से काट कर पशुओं को खिलाऐं। जब नीचे की पत्तियां सूखने लग जाएँ व अन्य पीली पड़ने लग जाएँ तब इसके कंदों को खोद लें। यह फसल 120 दिन में तैयार हो जाती है। प्रतिदिन आवश्यकतानुसार कंदों को निकालकर पशुओं को खिलाते रहें। खुदाई के समय ध्यान रहे कि कंदों की बाहरी परत को नुकसान न पहुंचे।

उपयोग : पत्तों व कन्दों को धो कर साफ करके छोटे–छोटे टुकड़े (3–5 से.मी.) में काटकर पशुओं को खिलाएं। एक वयस्क पशु को धीरे–धीरे मात्रा बढ़ाते हुए 10–15 कि.ग्रा. (कन्द व हरे पत्ते) प्रतिदिन खिलाया जा सकता है। अधिक मात्रा में खिलाने से पशु में आफरा आ सकता है। भेड़–बकरी के लिए 4–7 कि.ग्रा. प्रति पशु फोडर बीट पर्याप्त है। जिन दिनों पशुओं को फोडर बीट खिला रहे हैं उन दिनों उन्हें दिए जाने वाले बांटे की मात्रा आधी तक कम की जा सकती है। फोडर बीट को काटकर धूप में सुखाकर भंडारित भी किया जा सकता है। बाद में इसे दाना, चोकर, चूरी, खली आदि के साथ मिलाकर खिलाया जा सकता है।

फसल–चक्र : इस फसल को हर साल एक ही स्थान पर न बोयें। इसे चंवला, ग्वार, बाजरा आदि खरीफ फसलों के बाद बोया जा सकता है ।

उपज : उपरोक्त वर्णित कृषि क्रियाओं को अपनाकर भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर द्वारा विभिन्न स्थानों पर किये गए परीक्षणों में 65–100 टन प्रति हेक्टेयर हरे चारे का उत्पादन लिया गया है। प्रति कन्द का वजन डेढ़ से तीन कि.ग्रा. होता है।

4. वन–चरागाह पद्धति से चारा उत्पादन

हमारे देश मे वनों का पुराने समय से पशुओं की चराई के लिए उपयोग किया जाता रहा है। इसी सिद्धान्त को आगे बढ़ाते हुए चारा फसलों को पेड़ों के साथ उगाने की प्रक्रिया को वन–चरागाह पद्धति का नाम दिया गया है। यह भूमि प्रबन्धन की वह पद्धति है जिसमें पेड़ों की पंक्तियों के बीच की रिक्त जमीन में घास या चारा फसलों को उगाया जाता है, जिससे पशुओं के लिए चारा उपलब्ध हो जाता है। यह पद्धति बंजर व पथरीली तथा अनुपयोगी भूमियों में ईंधन एवं चारा प्राप्त करने के लिए उपयुक्त है। कृषि अयोग्य भूमि पर उन्नत तकनीकी से बहुउद्देशीय वृक्ष और झाड़ियों को उगाकर चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी और हरी खाद की आपूर्ति की जा सकती है। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में वन चरागाह पद्धति से गर्मी के दिनों में पशुओं को हरा चारा उपलब्ध करवाया जा सकता है। चारा वृक्षों से चारा पत्तियों के साथ–साथ जलावन लकड़ी भी प्राप्त होती है। वन–चरागाह पद्धति में उन्नत बहुवर्षीय घासों के साथ दलहनी फसलों को मिश्रित करने से चारा उत्पादन एवं घास की गुणवत्ता में वृद्धि होती है तथा कम उपजाऊ भूमि को अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। इस विधि से मृदा क्षरण कम होता है और भूमि में जीवांश पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होती है, जिससे भूमि की जल–धारण क्षमता एवं उत्पादकता बढ़ जाती है। इस प्रकार वन–चरागाह पद्धति द्वारा भूमि सुधार से कम उपयोगी भूमि को कृषि योग्य बनाकार विशाल पशुधन की भूख को मिटाने में मदद मिल सकती है। वन–चरागाहों में उगाये गये चारा वृक्षों में भूजल को गहराई से प्राप्त करने की क्षमता होती है, जिससे अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक सूखा सहन कर सकने के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण में भी सहयोग मिलता है। वन चरागाह पद्धति में घासों एवं फसलों के साथ छायादार पेड़ एवं झाड़ियाँ लगाते हैं जिससे पशुओं को गर्मी में तपती धूप से बचाव होता है।

वन–चरागाह पद्धति के लिए घास, पेड़ एवं झाड़ियों का चयन

वन–चरागाह पद्धति के लिए पेड़, पौधों, झाडियों एवं घासों का चयन वर्षा की मात्रा और भूमि के प्रकार के अनुसार किया जाता है। पेड़ों का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिऐ कि जिन वृक्षों की पत्तियाँ चारे के रूप में उपयोगी होती हैं उनमें तेज वृद्धि हों, पत्तियाँ पशुओं के खाने योग्य हों तथा काटने के बाद उनमें शाखा पुनः उत्पादन की क्षमता हो। सूखे को सहन करने की भी क्षमता एवं विपरीत परिस्थितियों में भी उगने की क्षमता आदि गुण भी होने आवश्यकता हैं। पेड़ एवं झाड़ियाँ छायादार होने चाहिए ताकि गर्मियों में पशुओं को तेज धूप से बचाव मिल सके। शुष्क क्षेत्र के लिए वन–चरागाह पद्धति में उगाये जाने वाले वृक्षों में मुख्य रूप से खेजड़ी, नीम, बबूल, कुमट, अरडू, सिरस, विलायती बबूल, अंजन, बेर, नूतन आदि का चयन किया जा सकता है तथा झाड़ियों में झरबेरी, फोग, लाना, खरसन, सिनिया आदि प्रमुख हैं। चरागाह विकास के लिए बहुवर्षीय घासें जैसे अंजन, धामण, सेवन, ग्रामना, मूरठ आदि का चयन करना चाहिए। इसके साथ–साथ बहुवर्षीय दलहनी फसलों में मुख्य तौर से तितलीमटर (क्लाईटोरिया),

सेम, वनकुल्थी, स्टाइलो, सिराट्रो आदि तथा एक वर्षीय दलहनी फसलों के रूप मे मोठ, मूंग, चंवला तथा ग्वार को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

सारणी 5 वर्षा की उपलब्धता के अनुसार पेड़/झाड़ियों एवं घासों का चयन।

वर्षा की मात्रा	पेड/झाड़ियाँ	घासें/दलहनी फसलें
150–300 मि.मी.	खेजड़ी (*प्रोसोपिस सिनरेरिया*) कुमट (*अकेशिया सेनेगल*) बोरड़ी (*जिजीफस न्यूम्लेरिया*) बेर (*जिजीफस रोटन्डीफोलिया*)	सेवण (*लेज्युरस सिंडिकस*) अंजन घास (*सेन्क्रस सिलियेरिस*)
300–500 मि.मी.	बबूल (*अकेशिया निलोटिका*) खेजड़ी (*प्रोसोपिस सिनरेरिया*) नीम (*अजाडिराक्टा इन्डीका*) अरडू (*ऐलयान्थस एक्सेल्सा*) सिरस (*एलबेजीया लेबेक*) नूतन (*डाइक्रोस्टेकिस न्यूटान्स*) अंजन (*हार्डविकिया बाईनेटा*)	सेवण (*लेज्युरस सिंडिकस*) अंजन (*सेन्क्रस सिलियेरिस*) मोडा धामण (*सेन्क्रस सेटीजेरस*) ग्रामणा (*पेनिकम एन्टीडोटेल*) सेम (*लबलब परप्यूरियस*) तितलीमटर (*क्लाइटोरिया टरनेशिया*)
500 मि.मी. से अधिक	सूबबूल (*ल्यूसेनिया ल्यूकोसिफेला*) अरडू (*ऐलयान्थस एक्सेल्सा*) शीशम (*डलबरजीया सिसो*) अंजन (*हार्डविकिया बाईनेटा*) सेंजना (*मोरिंगा ओलीफेरा*)	धामण (*सेन्क्रस सिलियेरिस*) मोडा धामण (*सेन्क्रस सेटीजेरस*) करड़ (*डाइकेन्थियम एन्यूलेटम*) ग्रामणा (*पेनिकम एन्टीडोटेल*) स्टाइलो (*स्टाइलोसन्थस हमाटा*)

बहुवर्षीय घासें, दलहनी पौधे एवं झाड़ियों के अलावा गोचर भूमि में पौष्टिक पौधे जैसे कांगा रोटी (*कोरकोरस ट्राइडेन्स*), दूधेली (*यूफोरबीया ग्रेनुलाट*), सोनेली (*पूलीकेरिया*), कांटी (*ट्रिबुलस टेरीस्ट्रीस*), बेकरिया (*इन्डीगोफेरा कोरडीफोलिया*), कागियो (*टेट्रापोगोन टेनुलस*), बनफूल (*हिलफेट्रोपियम मरीफोलियम*) आदि भी होते हैं, जिन्हें पशु बहुत पसन्द करते हैं लेकिन अधिक चराई के दबाव के कारण इन वनस्पतियों पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। इनके बीज आसानी से उपलब्ध नहीं होते परन्तु संरक्षित स्थानों से बीज संग्रहण कर घासों के बीज के साथ इनका छिड़काव किया जा सकता है। इस तरह के पौधे घास सूखने पर हरे चारे का काम करते हैं।

वन–चरागाह विकास एवं प्रबंधन

वन–चरागाह विकास के लिए उचित वृक्षों के साथ–साथ बहुवर्षीय घासों एवं चारा फसलों को लगाया जाता है जिससे चारे के साथ–साथ जलाऊ लकड़ी एवं काष्ट की प्राप्ति होती रहे। वन–चरागाह

सारणी 6 भूमि प्रकार के अनुसार पेड़ / झाड़ियों एवं घासों का चयन।

भूमि प्रकार	पेड़ / झाड़ियाँ	घासें
समतल भारी मृदा	बोरड़ी (*जिजीफस न्यूम्लेरिया*) खेजड़ी (*प्रोसोपिस सिनेरेरिया*) अंजन (*हार्डविकिया बाईनेटा*)	अंजन घास (*सेन्क्रस सिलियेरिस*) मोडा धामण (*सेन्क्रस सेटीजेरस*)
हल्की बलुई मृदा	बोरड़ी (*जिजीफस न्यूम्लेरिया*) खेजडी (*प्रोसोपिस सिनेरेरिया*) फोग (*कीलीगोनम पोलीगोनोइडिस*) नूतन (*डाइक्रोस्टेकिस न्यूटान्स*)	सेवण (*लेज्युरस सिंडिकस*) अंजन घास (*सेन्क्रस सिलियेरिस*)
कंकरीली	बोरड़ी (*जिजीफस न्यूम्लेरिया*) केर (*कपेरीस डेसिडुआ*) कुमट (*अकेशिया सेनेगल*)	बूर (*सीम्बोपोगोन ज्वारनकुसा*) गठिया (*डक्टाइलेक्टीकम सिंडीकस*)
टीब्बा	फोग (*केलीगोनम पोलीगोनोइडिस*) बावली (*अकेशिया जेक्कुमोन्टाई*) लाना (*हेलोजीलान सेलिकार्निकम*) कुमट (*अकेशिया सेनेगल*)	मूरठ (*पेनिकम टरजीडम*) ग्रामणा (*पेनिकम एन्टीडोटेल*) सेवण (*लेज्युरस सिंडिकस*)
क्षारीय / लवणीय	जाल (*सालवाडोरा परसिका*) खारालाना (*हेलकनीलोन रिकर्वम*) लुनी (*सुएडा फ्रुटीकोसा*) इजराइली बबूल (*अकेशिया टोरटीलिस*) देशी बबूल (*अकेशिया निलोटिका*)	खारा घास (*स्पोरोलोबोलस मारजीनेट्स*) रोडस घास (*क्लोरिस गायना*) दूब (*साइनोडोन डक्टाइलान*) *ब्रेकेरिया म्यूटिका*

पद्धति को टिकाऊ बनाये रखने के लिए वर्ष पर्यन्त उचित प्रबन्धन आवश्यक होता है। भूमि एवं जलवायु के अनुसार उचित पेड़–पौधों का चुनाव करके उचित समय एवं विधि अपनाकर वन–चरागाह विकसित किया जा सकता है। वन–चरागाह में पेड़–पौधे लगाने का उचित समय जून–जुलाई है। जहाँ चरागाह लगाना है वहाँ से अवांछित एवं अव्यवस्थित झाड़ियाँ हटाकार भूमि को अच्छी तरह से समतल करके पेड़ों को लगाने के लिए 45 × 45 × 45 से.मी. आकार के गड्ढ़े आवश्यक दूरी पर जून के महीने में बना लेने चाहिए। पेड़ से पेड़ की दूरी 5 × 5 मीटर, 5 × 10 मीटर या 10 × 10 मीटर जमीन की उपलब्धता व वृक्ष की प्रजाति के अनुसार रखी जाती है। पौधे लगाने से पूर्व गड्ढों को तीन–चौथाई तक 3:1 के अनुपात में मिट्टी तथा गोबर की खाद के मिश्रण से भर देना चाहिए। इसके बाद जुलाई माह में जैसे ही वर्षा शुरू हो, नर्सरी में तैयार किये हुऐ पौधों का रोपण कर देना चाहिए। पौधों को दीमक के प्रकोप से बचाने के लिए क्लोरपाईरीफॉस कीटनाशी को मिट्टी की ऊपरी सतह पर अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। वन–चरागाह लगाने से पूर्व

सरकारी एवं निजी पौधशालाओं में पौधों की उपलब्धता को सुनिश्चित कर लेना चाहिए। पेड़ व झाड़ियों को बीज द्वारा भी वन–चरागाह में उगाया जा सकता है, परन्तु इसमें पूर्ण सफलता मिलने की आशंका रहती है। इसलिए नर्सरी में तैयार पौधों का रोपण अच्छा रहता है।

पेड़ एवं झाड़ियाँ लगाने के बाद उन्नत तकनीकी से बहुवर्षीय घासों तथा दलहनी चारा फसलों को पेड़ों के बीच खाली जमीन पर उगायें। घासों को 50–75 से.मी. की दूरी रखते हुए पंक्तियों में बुवाई करें। प्रति हेक्टेयर जमीन के लिए 5–6 कि.ग्रा. अंजन घास, 5–6 कि.ग्रा. मोडा धामण, 6–7 कि.ग्रा. सेवण तथा 2–3 कि.ग्रा. ग्रामणा के बीज पर्याप्त होते हैं। बुवाई करते समय ध्यान रहे कि बीज के ऊपर मिट्टी की परत कम से कम आए अन्यथा अंकुरण पर विपरीत असर पड़ता है क्योंकि घास के बीजों के दाने बहुत ही छोटे होते हैं। बीजों को खेत की नम मिट्टी के साथ (1:5 आयतन से) मिलाकर बुवाई करें। बहुवर्षीय घासों को पुरानी जड़ों द्वारा भी लगाया जा सकता है परन्तु इसमें मेहनत ज्यादा लगती हैं व पानी की सुनिश्चितता जरूरी है। इसके अलावा गोलियाँ बनाकर जिसमें बीज, चिकनी मिट्टी, गोबर की खाद एव रेत का अनुपात 1:35:2.5:2.5 में हो, घास की बुवाई की जा सकती है।

अधिक चारा उत्पादन के लिए खाद एवं उर्वरकों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है। 5–10 टन गोबर की अच्छी तरह सड़ी हुई खाद को बुवाई से पूर्व खेत में मिला देवें। इसके बाद बुवाई के समय 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से फास्फोरस एवं नत्रजन डालें तथा वर्षा होने पर 20–25 दिन बाद 20 कि.ग्रा. नत्रजन का छिड़काव करें। इससे घास की गुणवत्ता बढ़ जाती है। इसके अलावा चरागाह से अधिक गुणवत्ता वाला चारा प्राप्त करने के लिए घासों के साथ–साथ दलहनी फसलें जैसे सेम, तितली मटर, स्टाइलो, ग्वार, चंवला, मोठ आदि को समानान्तर 4–4 मीटर की पट्टियों में बुवाई करें। दलहनी फसलों का 15–20 कि.ग्रा. बीज एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त रहता है। दलहनी फसलों के वन–चरागाह में लगाने से भूमि की उर्वरकता में सुधार होता है तथा प्रोटीन की मात्रा भी बढ़ जाती है। भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में वर्ष 2003 से 2006 तक वन–चरागाह पद्धति के लिए किये गये प्रयोग में अंजन/सेम को *हार्डविकिया बाईनेटा* व मोपेन के पेड़ों की बीच पट्टियों में उगाया गया। प्रयोग के परिणाम दर्शाते हैं कि प्रारम्भिक अवस्था में पेड़ों की वृद्धि धीमी होने से घास की उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ा (सारणी 7)। सेवण तथा अंजन घास को अकेले पेड़ों के बीच पट्टी में बोने से शुष्क पदार्थ की अधिक उपज प्राप्त हुई और दलहनी फसल चंवला अथवा सेम के साथ समानान्तर पट्टियों में बोने से कम वर्षा वाले वर्षों में चारे की उपज में थोड़ी कमी जरूर हुई परन्तु चारे की गुणवत्ता (क्रूड प्रोटीन) में बढ़ोतरी हुई। इस पद्धति में 40 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर डालने से की उपज में 15 प्रतिशत वृद्धि हुई। इसके अलावा पाँचवें वर्ष के उपरान्त पेड़ों से पत्तियाँ एवं जलाऊ लकड़ी प्राप्त होने लगी। प्रतिवर्ष 1.5–2.0 टन सूखे चारे के अलावा लगभग 100–200 कि.ग्रा. सूखी पत्तियाँ एवं 200–300 कि.ग्रा. जलाऊ लकड़ी प्राप्त होती है।

सारणी 7 फसल प्रणाली एवं नत्रजन उर्वरक का वन-चरागाह पद्धति में चारे की उपज पर प्रभाव

फसल प्रणाली	सूखा चारा उपज (टन प्रति हेक्टेयर)				
	2003	2004	2005	2006	औसत
अंजन घास	2.21	1.10	2.37	1.46	1.78
सेवण घास	3.08	0.66	2.95	1.19	1.97
चंवला / सेम	2.46	0.13	1.58	0.32	11.22
अंजन / चंवला / सेम	2.78	0.70	1.93	1.00	1.61
सेवण / चंवला / सेम	3.09	0.54	2.73	1.00	1.84
नत्रजन की मात्रा (कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर)					
0	2.54	0.62	2.12	0.91	1.55
40	2.90	0.64	2.49	1.09	1.78

वन–चरागाह पद्धति में कभी–कभी पेड़ एवं झाड़ियों को खेत में न लगाकर, चरागाह के चारों तरफ लगाकर बाड़ के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। मेड़बन्दी के साथ–साथ नागफनी, थोर और इजराइली बबूल लगा सकते हैं। अगर नीम के लिए उपयुक्त जमीन है तो इसे चरागाह के चारों तरफ लगा सकते हैं। इससे चरागाह की सुरक्षा के साथ–साथ इनकी पत्तियों को पशुओं के लिए चारे के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

वन–चरागाह पद्धतियों के प्रकार

वन–चरागाह में विभिन्न प्रकार के पेड़ों, झाड़ियों तथा बहुवर्षीय घासों को लगाया जाता है। इन पेड़–पौधों की बढ़वार एक समान नहीं होती, इसलिए पौधों की ऊँचाई के आधार पर वन–चरागाह पद्धति को तीन प्रकार की श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

1. एक स्तरीय वन–चरागाह पद्धति जिसमें केवल घास व दलहनी चारा फसलों की खेती की जाती है (चित्र 9)। इस पद्धति में समान ऊँचाई से बढ़ने वाली बहुवर्षीय घास तथा एक वर्षीय दलहनी चारे व दाने वाली फसलें या बहुवर्षीय दलहनी चारा फसलों को चरागाह भूमि या कम उपजाऊ भूमि पर उगाते हैं। इन फसलों को मिश्रित या समानान्तर पट्टियों में उगाया जाता है। चरागाह की इस पद्धति का उपयोग चारे के साथ खाद्यान्न उत्पादन के लिए भी किया जा सकता है।

चित्र 9 एक स्तरीय वन चरागाह पद्धति

2. द्विस्तरीय वन–चरागाह पद्धति में असमान ऊँचाई तक बढ़ने वाली चारा फसलों एवं वृक्षों/झाड़ियों की रोपाई एक साथ एक ही भूमि पर करते हैं। भूमि की सतह पर चारा फसलों के रूप में धामण, सेवण, कुरा घास, ग्रामणा तथा दलहनी चारा फसलों को चारा वृक्षों के बीच में उगाया जाता है (चित्र 10)। इस पद्धति में चारे वाली फसलें भूमि की सतह से कुछ ऊँचाई तक बढ़ती है तथा चारा वृक्ष ज्यादा ऊँचाई तक बढ़ते हैं।

चित्र 10 द्विस्तरीय वन चरागाह पद्धति

3. त्रिस्तरीय वन–चरागाह पद्धति में तीन स्तर की ऊँचाई के पौधे लगाये जाते हैं। इसमें कम ऊँचाई के लिए घास या दलहनी फसलें, मध्यम ऊँचाई के लिए झाड़ियाँ तथा तीसरे स्तर में ऊँचे बढ़ने वाले चारा वृक्षों को लगाया जाता है (चित्र 11)। अन्य पद्धतियों की तुलना में इस पद्धति से अधिक चारा एवं ईंधन मिलता है एवं चारे की उपलब्धता भी लम्बे समय तक बनी रहती है। इस तरह इस विधि से प्राकृतिक संसाधनों का अधिक उपयोग हो पाता है जिससे प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक चारा एवं ईंधन प्राप्त होता है।

चित्र 11 त्रिस्तरीय वन-चरागाह पद्धति

वन–चरागाह पद्धति में घास–पेड़ों में अनुकूलता एवं प्रतिस्पर्धा

वन–चरागाह विकास की प्रारम्भिक अवस्था में घास का उत्पादन वृक्षों एवं झाड़ियों से प्रभावित नहीं होता क्योंकि इस समय पेड़ों की वृद्धि धीमी होती है तथा उनका फैलाव भी कम होता है। जैसे–जैसे पेड़ बढ़ने लगते हैं और उनका फैलाव बढ़ता जाता है तो उनके आस–पास उगने वाली घास एवं चारा फसलों की वृद्धि प्रभावित होती है और उपज में कमी आ जाती है। भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में किये गये अध्ययन से पता चलता है कि घास की उपज एवं पाला उत्पादन बेर की झाड़ियों के घनत्व से प्रभावित हुआ। झाड़ियों का घनत्व बढ़ने से घासों से चारा उत्पादन कम हुआ जबकि पाला उत्पादन बढ़ गया। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि झाड़ियों के घनत्व जिससे 14 प्रतिशत क्षेत्रफल आच्छादित रहता है, अधिक चारा प्राप्त किया गया। इस प्रकार अन्य पेड़ों जैसे बबूल, कुमट, नीम, सिरस आदि के नीचे घास की वृद्धि कम होती है जबकि खेजड़ी के नीचे व आस–पास घास एवं चारा फसलों की वृद्धि अच्छी होती है और चारा उत्पादन बढ़ जाता है। एक अन्य प्रयोग में पाया गया कि मोपेन एवं हार्डविकिया बाईनाटा के पौधों को 9.5 मीटर की दूरी पर लगाने से प्रथम चार वर्षों तक घासों एवं दलहनी फसलों के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा जबकि पांचवे वर्ष में वृक्ष से 1 मीटर की दूरी तक घास एव दलहनी फसलों की वृद्धि कुछ कम हुई तथा पेड़ से दूरी बढ़ने पर घास की वृद्धि प्रभावित नहीं हुई। इसी तरह वृक्षों की वृद्धि पर घास का प्रभाव देखा जा सकता है। प्रारम्भिक अवस्था में जब वृक्ष छोटे होते हैं और जड़ें कम गहराई तक होती हैं तब घास और वृक्ष में पोषक तत्वों एवं नमी के लिए प्रतिस्पर्धा अधिक होती है और पेड़ों की वृद्धि प्रभावित होती है परन्तु जैसे–जैसे वृक्ष बड़े होते जाते हैं और जड़ें गहराई तक जाती हैं तब घास की जड़ों के साथ प्रतिस्पर्धा कम हो जाती है और पेड़ों की वृद्धि पर घास का प्रभाव नहीं होता। इसलिए स्थापना वर्ष में पेड़ों के तने से 1 मीटर की परिधि की घास निकाल देनी चाहिए।

वन–चरागाह पद्धति की देखभाल

वन–चरागाह लगाने के बाद अधिक उत्पादन के लिए उचित देखभाल करना अति आवश्यक है। इस पद्धति का विकास वैसे तो बरसात के महीनों में ही किया जाता है लेकिन रोपे गये पौधों के लिए प्रथम तीन महीनों तक अधिक सावधानी बरतनी चाहिए। वर्षा कम होने पर पर्याप्त नमी बनाऐं रखने के लिए

ऊपरी मृदा की गुड़ाई कर देनी चाहिए या कूड़े–करकट को पौधों के आस–पास बिछा देना चाहिए, जिससे भूमि से वाष्पीकरण रोका जा सकता है। वन–चरागाह के स्थापना वर्ष में पशुओं की चराई पर प्रतिबन्ध रखना चाहिए और जब घास बढ़ जाऐ तो काटकर उसका इस्तेमाल करना चाहिए। वर्ष में कम से कम एक बार अवांछित झाड़ियों एवं खरपतवारों को साफ करना चाहिए ताकि ये वन–चरागाह की गुणवत्ता को खराब न कर सकें तथा नमी एवं पोषक तत्वों का ह्रास भी न हो। पर्याप्त नमी होने पर आवश्यकतानुसार एक बार उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। बहुवर्षीय घासों की लगातार चराई के कुछ वर्षों बाद घास सूखने लगती है इससे घास का फूटना कम हो जाता है, इसलिए पुराने अवशेष (स्टबल्स) को हटाकर दुबारा घास की बुवाई करनी चाहिए।

वन–चरागाह में चराई एवं कटाई प्रबन्धन

वन–चरागाह का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि चरागाह की उत्पादकता लम्बे समय तक बनी रहे। वृक्षों एवं झाड़ियों की आवश्यकतानुसार कटाई–छंटाई करें। घास लगने के प्रथम वर्ष पशुओं से चराई नहीं करावें और जहाँ पर पशुओं द्वारा चराई नहीं करानी हो तो घास को 50 प्रतिशत फूल आने की अवस्था में काटकर पशुओं को हरी घास खिला सकते हैं अथवा सुखाकर 'हे' बनाकर जब हरी घास उपलब्ध नहीं हो पशुओं को खिलाया जा सकता है। अधिक चराई होने से बोई गई घासें जल्दी खत्म हो जाती हैं और इनकी जगह ऐसे खरपतवार तैयार हो जाते हैं जिनको पशु नहीं खाते। घास की चराई या कटाई हर साल करायें। इससे घास अच्छी फूटती है और घास का उत्पादन बढ़ता है।

अधिक चारा प्राप्त करने एवं चरागाह को पूर्ण विकसित रखने के लिए चक्रवार चराई करानी चाहिए। लगातार चराई पद्धति में पशुओं को चराने से चरागाह के किसी भी भाग को विश्राम नहीं मिलता तथा घास को वृद्धि का समय नहीं मिलता है इससे चरागाह जल्दी समाप्त हो जाते हैं। परिवर्तित चराई पद्धति में चरागाह को चार बराबर भागों में बाँट देते हैं। पहले एक भाग में पशुओं को चराते है तथा इस भाग में चारे की उपलब्धता कम होने पर अगले भाग में पशुओं को चराई के लिए प्रवेश देते हैं। इस तरह चारों भागों की पूर्ण चराई करनी चाहिए, जिससे प्रत्येक भाग को विश्राम मिल जाता है और घास की वृद्धि के लिए समय भी मिल जाता है। चरागाह के कुछ हिस्से को बीज उत्पादन के लिए रखना चाहिए। वन–चरागाह पद्धति में जब उन्नत घास, जैसे अंजन या सेवण घास को दलहनी फसल के साथ मिश्रित करके बुवाई करते हैं तो प्रति हेक्टेयर 3–4 गायों या 10–12 भेड़ों या बकरियों के लिए पर्याप्त चारा मिल जाता है।

शुष्क क्षेत्र में सर्दी तथा गर्मी की ऋतु में जब हरा चारा उपलब्ध नहीं होता है तब वन–चरागाह पद्धति में लगे वृक्षों की कटाई–छंगाई करके प्राप्त पत्तियों को हरे चारे के रूप मे उपयोग किया जा सकता है। इन वृक्षों की मुलायम टहनियों, फल एवं फली को भी चारे के रूप मे प्रयोग लिया जा सकता है। कुछ पौधों की फलियाँ उसकी पत्तियों से अधिक स्वादिष्ट होती हैं। चारा वृक्षों की कटाई तब करें जब वृक्ष पूर्ण रूप से विकसित हो जाएं। बाड़ के रूप में लगाई गई झाड़ियों को 2–3 मीटर ऊपर से काटने से अधिक चारा मिलता है। जबकि चारा वृक्षों की कटाई करते समय इस बात का ध्यान रहे कि 2–3 से.मी. से अधिक मोटाई की शाखाओं को न काटें तथा वृक्ष के एक तिहाई हिस्से को छोड़ कर कटाई–छंगाई करें जिससे वृक्ष की वृद्धि प्रभावित न हो। इस प्रकार वन–चरागाह पद्धति से वर्ष भर चारे की उपलब्धता को बनाये रखने में मदद मिलती है।

5. घास उत्पादन की उन्नत तकनीकियाँ

राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में सूखा एवं अकाल एक अवश्यम्भावी प्रक्रिया है, जिसके कारण यहाँ खेती करना कठिन और जोखिम भरा है। यहाँ के किसानों की अर्थव्यवस्था में पशुधन का महत्वपूर्ण योगदान है और अकाल के समय इसका योगदान और भी बढ़ जाता है। पशु जनसंख्या की दृष्टि से थार मरुस्थल विश्व के सभी मरुस्थलों में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व वाला क्षेत्र है। इसके साथ–साथ कम वर्षा, अव्यवहारिक चरागाह प्रबंधन, सामाजिक व्यवस्था आदि के कारण शुष्क क्षेत्रों में चारे की माँग व उपलब्धता में अन्तर बना रहता है। अकाल के वर्षों में तो यह अन्तर और भी बढ़ जाता है। पश्चिमी राजस्थान में चरागाह, परती–भूमि, ओरण, कृषि योग्य भूमि पर उगाई जाने वाली चारा फसलें, खरपतवार, झाड़ियाँ, वृक्ष व धान्य फसलों के उत्पादोत्पाद एवं अवशेष आदि चारा प्राप्ति के मुख्य स्त्रोत हैं। कृषि के याँत्रिकरण, औद्योगीकरण, सड़कों का निर्माण, नगरों का विस्तार, सिंचाई सुविधाओं का विकास आदि के कारण चराई के प्राकृतिक संसाधन सिकुड़ते जा रहे हैं। चरागाहों के कुप्रबंधन व अत्यधिक चराई से उपलब्ध चराई भूमि की उत्पादकता 300 से 400 कि.ग्रा. सूखा चारा प्रति हेक्टेयर रह गई है। ऐसी स्थिति में चरागाह विकास व प्रबंधन महत्वपूर्ण हो जाता है। चरागाह विकास से किसानों की अर्थव्यवस्था को मजबूत किया जा सकता है। चरागाह विकास के लिए बहुवर्षीय घासें जैसे अंजन, धामण, सेवन, ग्रामणा, मूरठ आदि का चयन करना चाहिए, जो उच्च गुणवत्ता का चारा प्रदान करती हैं।

अंजन घास (*सेनक्रस सिलिएरिस*)

पश्चिमी राजस्थान में पाई जाने वाली बहुवर्षीय घासों में अंजन एक महत्वपूर्ण घास है। अंजन घास पोएसी कुल का पौधा है जिसको पश्चिमी राजस्थान में रुदार धामण भी कहते हैं। इसकी जड़ों में राइजोम्स (गाँठे) होते हैं। छोटी अवस्था में इसकी पाचकता बहुत अधिक होती है व पकने पर भी पाचकता अच्छी बनी रहती है। इसमें क्रूड प्रोटीन 6–10 प्रतिशत तक पाई जाती है तथा इसके चारे में कोई हानिकारक तत्व नहीं पाए जाते। अंजन घास फैलने वाली व सीधे बढ़ने वाली दो तरह की होती है। इसकी ऊँचाई पकने पर 120 से.मी. तक हो सकती है। अंजन घास की जड़ें जमीन में लगभग 2 मीटर तक गहरी जाती हैं व एक बूजे में 1.6 मीटर भूमि के समानान्तर जड़ विस्तार होता है। जिससे यह घास भू–क्षरण रोकती है साथ ही जड़ों के सड़ने–गलने एवं पत्तियों के गिरने से भूमि में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा भी बढ़ती है।

जलवायु व भूमि : अंजन घास प्रायः सभी तरह की भूमियों में उगाई जा सकती है परन्तु रेतीली–दोमट भूमि में इसकी बढ़वार अच्छी होती है। किसान प्रायः कम उपजाऊ भूमि में घास लगाते हैं। यह सूखारोधी व विभिन्न तरह की जलवायु में उगायी जा सकती है। यह घास भू–उपयोग वर्गीकरण के अन्तर्गत, वर्ग 5 व इससे ऊपर की भूमि जिसमें अन्य फसलें उगाना संभव नहीं है, उगाई जा सकती है। रेतीली, रेतीली–दोमट, दोमट व पथरीली भूमि में यह सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। सर्दी ऋतु में वर्षा होने पर यह अन्य बहुवर्षीय घासों की तुलना में जल्दी फूटती है।

भूमि की तैयारी : भूमि के चयन के बाद आवारा पशुओं व अन्य जीवों से चरागाह को बचाने के लिए चारों तरफ बाड़ लगाना अति आवश्यक है। काँटेदार तारों की बाड़ स्थाई होती है, परन्तु मंहगी होती है। इसके स्थान पर खाई और डोली की बाड़ बनाई जा सकती है। इसके लिए 1.25 मीटर चौड़ी व 1.00 मीटर गहरी खाई खोदी जाती है और खाई की मिट्टी से अन्दर की तरफ मेड़ बनाते हैं। उस पर काँटेदार झाड़ियाँ जैसे कुमट, कैर, बेर आदि व वृक्ष जैसे देशी बबूल, गोंदा, खेजड़ी आदि लगाये जा सकते हैं। इन झाड़ियों व पेड़ों से सुरक्षा के साथ–साथ अन्य लाभ जैसे चारा, फल, लकड़ी इत्यादि भी मिलते हैं। इस तरह से तैयार बाड़ का नियमित रुप से रख–रखाव जरुरी है। सार्वजनिक चरागाह में लोगों के सहयोग से लगाई गई बाड़ सफल रहती है। भूमि की तैयारी अन्य फसलों की तरह ही की जाती है। दो–तीन जुताई करके पाटा लगा देवें। खेत की तैयारी वर्षा ऋतु की पहली प्रभावी वर्षा होने से पहले करें। खेत से कम उपजाऊ झाड़ियाँ, बहुवर्षीय खरपतवार आदि निकाल देवें। उपयोगी झाड़ियों व पेड़ों का घेरा (क्रॉउन कवर) भी प्रक्षेत्र के क्षेत्रफल का 14 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। एक हेक्टेयर क्षेत्र में 30–35 पेड़ पर्याप्त रहते हैं।

किस्में : किस्मों का चयन जलवायु तथा भूमि व चारे की माँग के अनुसार करें। अंजन घास की काजरी 75 (मारवार अंजन, चित्र 12), काजरी अंजन–358 (चित्र 13), काजरी अंजन–2178 व जिनोटाइप काजरी–2221 उन्नत किस्में / जिनोटाइप्स भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर द्वारा विकसित की गई हैं जो शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं। इसके अलावा आईजीएफआरआई–3108, आईजीएफआरआई–727 अन्य किस्में हैं। इस घास की अनुशंसित (रिलीज्ड) किस्में कम हैं।

चित्र 12 काजरी-75 अंजन घास की एक किस्म

चित्र 13 अंजन घास काजरी अंजन-358

बुवाई का समय व विधि: अंजन घास की बुवाई जुलाई से अगस्त के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है। जहाँ सिंचाई की सुविधा है वहाँ फरवरी–मार्च में भी बुवाई की जा सकती है। वर्षा ऋतु में, वर्षा होने पर ही बुवाई करें। यद्यपि तैयार खेत में सूखे में ही बुवाई की जा सकती है, परन्तु वर्षा देर से होने पर चींटियाँ, आंधियाँ इत्यादि बीज को नुकसान पहुँचा सकते हैं। चरागाह को बीज द्वारा, पौध द्वारा, जड़ों द्वारा व बीजों की गोलियाँ बनाकर लगाया जा सकता है।

बीज द्वारा: बीजों को छिड़ककर या पंक्तियों में बोया जा सकता है (चित्र 14)। पंक्तियों में विभिन्न शस्य क्रियाओं को करने में आसानी रहती है तथा चरागाह की उत्पादकता एवं आयु बढ़ती है। शुष्क क्षेत्र में 75 से. मी. पंक्ति से पंक्ति की दूरी उचित पाई गई है। प्रयोग में जब समान बीज दर से 50 से.मी. व 75 से.मी. पंक्ति से पंक्ति की दूरियों का चारा उत्पादन पर प्रभाव का अध्ययन किया गया तो इसके उत्पादन में कोई अंतर नहीं पाया गया (सारणी 8)। यद्यपि 75 से.मी. दूरी रखने पर, 50 से.मी. की अपेक्षा समय व श्रम की बचत होती है।

सारणी 8 शुष्क क्षेत्र में घास की उत्पादकता (कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) पर पंक्ति से पंक्ति की दूरी का प्रभाव

पंक्ति से पंक्ति की दूरी	2005 (प्रथम वर्ष)		2006 (द्वितीय वर्ष)	
	हरा चारा	सूखा चारा	हरा चारा	सूखा चारा
50 से.मी.	4696	1526	10745	2522
75 से.मी.	4465	1513	10122	2422
क्रांतिक अन्तर (5 प्रतिशत)	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं

चित्र 14 अंजन घास की पँक्तियों में बुवाई

बुवाई का समय, बोने की विधि, भूमि की दशा, जलवायु इत्यादि के अनुसार बीज दर 3–12 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर होती है। औसत 5–6 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर काम में लेते हैं। बुवाई के समय बीज व खेत की नम मिट्टी (1:5 आयतन से) मिलाकर मिश्रण बनायें। तैयार खेत में 75 से.मी. दूरी पर कल्टीवेटर से उथले उमरे बनायें। तैयार मिश्रण को इन उमरों में बोते हैं। बुवाई के उपरान्त उमरों में झाड़ी, नीम या बबूल इत्यादी की टहनी, बीज को ढ़कने के लिए चलाते हैं। बुवाई हमेशा उथली करें क्योंकि अंजन घास का दाना (केरिऑपसिस) छोटा होता है व बीजों पर मिट्टी ज्यादा आने पर अंकुरण प्रभावित होता है। बीज को 16–18 घंटे पानी में गीला करके (हाइड्रेशन) छाया में सुखाकर बोया जाता है। 0.25 प्रतिशत थिराम का प्रयोग बीजों के अंकुरण के लिए लाभप्रद पाया गया है। बुवाई के तुरन्त बाद यदि वर्षा हो जाए तो चरागाह अच्छा स्थापित होता है।

पौध द्वारा : पौध तैयार करने के लिए वर्षा होने से कम से कम 45 दिन पहले बीज नर्सरी में बो दें। वर्षा होने पर तैयार पौध को खेत में स्थापित करें। पौधे से पौधे की दूरी 50–75 से.मी. व पंक्ति से पंक्ति की दूरी 75 से.मी. रखें। एक जगह 2–3 पौधे लगायें। पौधे लगाते समय ऊपर का 3/4 हिस्सा काट देवें। पौध लगाने के तुरन्त बाद उसे चारों तरफ से अच्छी तरह से दबा देवें। इसके बाद पानी दें। तीन–चार दिन तक प्रतिदिन पानी दें। इस विधि से चरागाह लगाना मंहगा अवश्य पड़ता है व सफलता तक पानी की उपलब्धता पर निर्भर करती है, परन्तु स्थापना एक समान व अच्छी होती है। एक हेक्टेयर में 25 से 30 हजार पौधे पर्याप्त रहते हैं।

जड़ों द्वारा : पुराने स्थापित घास की जड़ों द्वारा भी अंजन घास का चरागाह लगाया जा सकता है। लगाते समय यह ध्यान रहे कि जड़ों में 2–3 राइजोम्स (गाँठें) अवश्य हों। लगाने की विधि, सावधानियाँ, लागत आदि पौध द्वारा चरागाह लगाने के समान ही हैं।

बीजों को गोलियों द्वारा : अंजन घास का बीज हल्का होता है। 1000–बीजों का वजन लगभग 2.5 ग्राम होता है। थोड़ी सी हवा की गति से बीज उड़ जाते हैं। अतः उन क्षेत्रों में जहाँ वायु गति अधिक होती है व भूमि उबड़–खाबड़ है, गोलियाँ बनाकर भी बुवाई की जा सकती है। गोलियाँ बनाने के लिए 100–125 ग्राम बीज को 3.0 से 3.5 कि.ग्रा. काली मिट्टी, 250 ग्राम बालू रेत व 250 ग्राम गोबर की सड़ी हुई खाद में मिलाकर गोलियाँ बनाएं। गोली बनाने की मशीन से भी गोली बनाई जा सकती हैं। गोलियों का व्यास लगभग 4 से 6 मि.मी. होना चाहिए जिनमें 2–3 बीज हों। गोलियाँ बनाकर धूप में सुखा लें। एक हेक्टेयर के लिए 60–80 कि.ग्रा. गोलियों की आवश्यकता होती है। बुवाई खुले उमरों में वर्षा से पहले या वर्षा होने पर करें। बड़े व उबड़–खाबड़ क्षेत्र में बुवाई छिड़क कर भी की जा सकती है। गोलियाँ सख्त नहीं बनानी चाहिए। अगर गोलियाँ सख्त बन रही हैं तो गोबर की खाद का अनुपात बढ़ा देवें। इस विधि से चीटियों व हवा से बीज की सुरक्षा होती है व बीज की बचत भी होती है।

खाद व उर्वरक : शुष्क क्षेत्र में कम वर्षा एवं भूमि में नमी की कमी होने के कारण साधारणतया उर्वरकों का प्रयोग कम किया जाता है। परन्तु कमजोर भूमियों से अधिक व उच्च गुणवत्ता का चारा प्राप्त करने के लिए आवश्यकतानुसार खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। अंजन घास का चरागाह लगाने के लिए 5 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की अच्छी सड़ी खाद या अन्य कार्बनिक खाद को बुवाई से पहले खेत में अच्छी तरह मिलाने से चरागाह की स्थापना अच्छी होती है। इससे हल्की मृदाओं में जल–धारण क्षमता बढ़ती है तथा बीजों का अंकुरण अच्छा होता है और चारा उत्पादन बढ़ जाता है। इसके अलावा 40 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 20 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष प्रयोग किए जाते हैं।

अन्तराशस्य क्रियाऐं : खरपतवार घास के साथ नमी एवं पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं इसलिए चरागाह से खरपतवार निकालना उसकी उत्पादकता एवं गुणवत्ता बढ़ाने के लिए आवश्यक है। प्रथम बार (बुवाई के 15–20 दिन बाद) कल्ले बनते समय व द्वितीय बार फूल आने पर (बुवाई के 30–35 दिन बाद) खरपतवार निकालें। पंक्तियों में बोए गए चरागाह में ट्रेक्टर चालित कल्टीवेटर से अंतराशस्य क्रियाएं की जा सकती हैं। इससे जमीन में वायुसंचार बढ़ता है, पानी का संरक्षण होता है व जमीन खुलने के कारण जड़ों का पर्याप्त विकास होता है, जिससे पौधों की बढ़वार अधिक होती है।

चरागाह उपयोग : अंजन घास के चारे में हानिकारक तत्व नहीं होने के कारण यह सभी तरह के जानवरों को खिलाया जा सकता है। चारे को चराई कराकर, काटकर या 'हे' बनाकर उपयोग में लाया जा सकता है। चराई अथवा कटाई 50 प्रतिशत फूल आने की स्थिति पर करनी चाहिए। कम वर्षा होने पर अंजन घास के स्थापित चारागाहों में यह स्थिति वर्षा के दो सप्ताह बाद ही आ जाती है (चित्र 15)। अच्छी वर्षा होने पर यह अवस्था 30 दिन तक आ जाती है। हमारे प्रयोग में 30 दिन बाद कटाई करने पर अधिक ऊपज मिली है। यद्यपि द्वितीय वर्ष सूखा चारा 60 दिन पर कटाई करने पर ज्यादा मिला परन्तु हरा चारा प्रथम वर्ष 30

चित्र 15 वर्षा के दो सप्ताह बाद अंजन घास की बढ़वार

दिन की कटाई से अन्य कटाइयों से ज्यादा मिला। द्वितीय वर्ष 30 दिन की कटाई से 45 दिन की कटाई के बराबर व 60 दिन की कटाई से अधिक हरा चारा मिला जबकि प्रोटीन की मात्रा 30 दिन की कटाई पर अधिक पाई गयी (सारणी 9)। स्थापना वर्ष (2004) में घास की बुवाई के बाद कम वर्षा (150 मि.मी.) हुई, जबकि दूसरे वर्ष (2005) में जुलाई एवं अगस्त महीनों में अच्छी वर्षा (210 मि.मी.) होने से पौधों कि वृद्धि अच्छी हुई जिससे द्वितीय वर्ष चारे की पैदावार अधिक मिली। वर्षा के सामान्य होने पर व उचित वितरण की स्थिति में बढ़वार शुरु होने के 30 दिन बाद चारे कटाई करने पर अधिक व उच्च गुणवत्ता का चारा मिलता है।

सारणी 9 कटाई अन्तराल का अंजन घास के चारा उत्पादन (कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) पर प्रभाव

कटाई (बुवाई/फुटान के बाद)	2004 (प्रथम वर्ष)			2005 (द्वितीय वर्ष)		
	हरा चारा	सूखा चारा	क्रूड प्रोटीन (प्रतिशत)	हरा चारा	सूखा चारा	क्रूड प्रोटीन (प्रतिशत)
30 दिन	1979	775	10.85	5680	1510	12.02
45 दिन	1585	628	9.66	6370	2230	10.38
60 दिन	1592	659	8.87	3810	2420	9.75
क्रांतिक अन्तर (5 प्रतिशत)	327	105	–	1330	720	–

अंजन घास के चरागाह में स्थापना वर्ष में चराई नहीं कराई जाती, क्योंकि चराई से पशुओं के मुँह के द्वारा बूजों जमीन से बाहर निकलने का डर रहता है व बूजों के छोटे होने के कारण उन्हें पशुओं के खुरों से भी नुकसान पहुँच सकता है, अतः प्रथम वर्ष में घास काटकर खिलाना उचित रहता है। कटाई जमीन से 10 से.मी. छोड़ कर करें। द्वितीय वर्ष व उसके बाद, चरागाह की वहन क्षमता के अनुसार नियंत्रित चराई करानी चाहिए। एक चरागाह जिसकी उपज क्षमता 1500 कि.ग्रा. सूखा चारा प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष हो, वर्ष भर 25–30 जानवरों (ए.सी.यू.) की प्रति 100 हेक्टेयर में चराई कराई जा सकती है। चराई के बाद यदि तना बचता है तो उसकी कटाई कर देनी चाहिए।

चारा उत्पादन : अच्छी वर्षा होने पर 2–3 कटाई ली जा सकती हैं व इनसे औसत 9000 से 10000 कि.ग्रा. हरा व 3000 से 3500 कि.ग्रा. सूखा चारा प्रति हेक्टेयर मिलता है। चारा उत्पादन भूमि की दशा, वर्षा की मात्रा व वितरण, कटाई–चराई प्रबंधन, खाद व उर्वरकों का प्रयोग, किस्म, चरागाह की आयु आदि पर निर्भर करता है। मानसून के जल्दी व देर से आने पर भी अंजन घास अच्छा उत्पादन देती है। प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि अगस्त के द्वितीय सप्ताह में वर्षा शुरु होने पर व औसत से कम वर्षा होने पर भी 50 प्रतिशत फूल आने की दशा में तीन बार कटाई की जा सकती है। दो बार कटाई करने पर प्रयोग में स्थापना के द्वितीय वर्ष 16100 कि.ग्रा. हरा व 3890 कि.ग्रा. सूखा चारा प्रति हेक्टेयर मिला (सारणी 10)।

सारणी 10 अंजन घास के तीन अधिक ऊपज देने वाले जिनोटाइप्स की दो बार कटाई से स्थापना के द्वितीय वर्ष प्राप्त चारा उपज (कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर)

जिनोटाइप्स	हरा चारा	सूखा चारा
काजरी 288	16100	3440
काजरी 303	15910	3890
काजरी 657	15600	3650

चरागाह रखरखाव : थार मरुस्थल के शुष्क क्षेत्र में अन्य मरुस्थलों की तुलना में पशु घनत्व अधिक होने के करण आवारा पशुओं से चरागाह को नुकसान की संभावना बनी रहती है, जिससे बचाव जरुरी है। अधिक चराई से चरागाह की उम्र कम हो जाती व वार्षिक खरपतवार आ जाते हैं अतः वहन क्षमता के अनुसार वैज्ञानिक विधि से चराई करावें। चरागाह में अनावश्यक बहुवर्षीय झाड़ियाँ व पेड़ न आने दें। जानवरों को छाया हेतु 30–35 पेड़ प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहते हैं। ये पेड़ छाया के साथ–साथ चारा भी प्रदान करेंगे। पीने के पानी का समुचित प्रबंध करें। खरपतवार निकालते रहें व ट्रेक्टर चलित कल्टीवेटर से पंक्तियों में अन्तराशस्य क्रियाएं करें। इससे भूमि की जलवहन क्षमता व वायु संचार बढ़ता है व जड़ों का विकास अधिक होने के कारण पौधों की बढ़वार अधिक होती है। अगर पानी की सुविधा है व बूजे मर रहें हैं तो हल्की सिंचाई करें। दीमक से बचाव हेतु क्लोरपाईरीफॉस या अन्य कार्बनिक कीटनाशक जैसे नीम की निंबोली के

पाउडर का प्रयोग भी कर सकते हैं। चराई के बाद कुछ तने बचें तो काट देवें। इस तरह से रखरखाव से चरागाह की उत्पादन क्षमता 4–5 वर्ष तक बनी रहती है। चरागाह का कुछ हिस्सा (1/10) बीज उत्पादन के लिए भी रखा जा सकता है।

मोडा धामण (*सेन्क्रस सेटिजेरस*)

पोएसी कुल का बूजा बनाने वाला यह बहुवर्षीय घास है जिसके पौधों की ऊँचाई 60–80 से.मी. होती है। यह सभी प्रकार के पशुओं के लिए एक पाचक घास है जो कि खराब चरागाह को सुधारने के काम में ली जा सकती है। इसके शुष्क पदार्थ में 5 से 12 प्रतिशत तक क्रूड प्रोटीन पाई जाती है।

वितरण : यह मुख्य रूप से उत्तरी–पश्चिमी भारत व उत्तर–पूर्वी उष्ण अफ्रीका में पाई जाने वाली घास है। भारत में सम्पूर्ण राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र के अर्ध–शुष्क भाग इस घास के लिए अधिक उपयुक्त हैं।

जलवायु व भूमि : यह गर्मी व सूखा सहन करने वाली घास है जो 200 मि.मी. तक वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाई जाती है। अच्छी वृद्धि के लिए 300 मि.मी. वार्षिक वर्षा की आवश्यकता होती है। इस घास का अनुकूलन शुष्क व अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में अधिक होती है। यह हल्की भूमि में उगने वाली घास है परन्तु कई प्रकार की भूमियों में यह अच्छी तरह उगती है। दो तीन जुताई कर खेत को अच्छी तरह से तैयार कर लेना चाहिए। खेत से बहुवर्षीय खरपतवार व अनावश्यक झाड़ियों को निकाल कर खेत को साफ कर लेना चाहिए। यह कार्य मानसून की वर्षा से पहले कर लेना चाहिए।

किस्में : मारवाड़ धामण (काजरी–76) व पूसा पीला अंजन।

बुवाई का समय : जुलाई का महीना बुवाई के लिए सर्वोत्तम है। ग्रीष्म कालीन मानसून की प्रथम प्रभावी वर्षा के बाद तैयार खेत में बुवाई करें।

बीज दर : बुवाई के लिए 5–6 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज पर्याप्त रहती है।

बुवाई विधि : अंजन घास की तरह बुवाई सीधे बीज द्वारा, तैयार पौध द्वारा, जड़ों द्वारा या बीजों की गोलियाँ बनाकर की जा सकती है।

खाद व उर्वरक : अंजन घास की तरह ही खाद व उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। अच्छी पैदावार के लिए 40 कि.ग्रा. नत्रजन व 20 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें। गोबर की अच्छी सड़ी–गली 5 टन खाद प्रति हेक्टेयर प्रयोग करने से भूमि की उर्वरा शक्ति में सुधार होता है, भूमि की जल–धारण क्षमता बढ़ती है व पौधों की बढ़वार अच्छी होती है।

अन्तराशस्य क्रियाएं : खरपतवारों से पौधों की प्रारम्भिक बढ़वार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। खरपतवार न निकलने की स्थिति में चरागाह लगाने में असफलता हो सकती है। अतः बुवाई के 15–20 दिन बाद प्रथम व बुवाई के 30–35 दिन बाद खरपतवार अवश्य निकालें। रोपित चरागाह में आने वाले वर्षो में भी पुनर्जनन के बाद इसी अन्तराल से निराई गुड़ाई करें। जमीन में वायु संचार बढ़ाने हेतु कम से कम एक बार ट्रेक्टर चालित कल्टीवेटर से अन्तराशस्य क्रियाऐं करनी चाहिये।

चारा उपयोग : चारे को काट कर व चराई कराके या 'हे' बनाकर प्रयोग किया जाता है। यह घास छोटे जानवारों व घोड़ों के लिए भी लाभदायक है। फूल आने के समय प्रयोग से घास में गुणवत्ता व उत्पादकता उचित होती है।

चारा उत्पादन : चारे की उपज बहुत से कारकों से प्रभावित होती है। परन्तु औसतन 4–5 टन हरा चारा 2–3 कटाई से प्राप्त होता है। अर्ध शुष्क क्षेत्रों में यह उपज दोगुना होती है। शुष्क पदार्थ की उपज 0.4 से 2.0 टन प्रति हेक्टेयर होती है।

चरागाह रख–रखाव : मोडा धामण बहुवर्षीय होने के कारण इसकी बार–बार बुवाई की आवश्यकता नहीं होती। चरागाह की प्रथम वर्ष में केवल कटाई करें एवं अगले वर्षों में चरागाह की उत्पादकता के अनुसार चराई कराएं। अत्यधिक चराई न होने देवें। खरपतवारों को समय–समय पर निकलते रहें। अनावश्यक झाड़ियाँ न आने देवें। पौधो की संख्या कम होने पर दुबारा बुवाई करें तथा हो सके तो चरागाह की सुरक्षा के लिए बाड़ लगाएं।

सेवण घास (*लेज्युरस सिंडिकस*)

सेवण धास पोएसी कुल का बहुवर्षीय पौधा है। यह भारतवर्ष के पाँच घास क्षेत्र में से डाईकेन्थियम–सेन्क्रस–लेज्युरस कवर की एक मुख्य घास है। विकसित जड़ राइजोम्स तंत्र के कारण यह रेतीली भूमि में उगती है। सेवण के पौधों की ऊँचाई लगभग 100 से.मी. व प्ररोहों की संख्या बहुत ज्यादा होती है। यह जानवरों के लिए पोषक व पाचक घास है जिसकी ताजा पत्तियों में 7–14 प्रतिशत तक क्रूड प्रोटीन होती है।

वितरण : यह घास मिश्र, सोमालिया, अरब, एबिसिनिया, पाकिस्तान (सिंध) एवं उत्तरी पश्चिमी भारत में पाई जाती है।

जलवायु व भूमि : यह शुष्क जलवायु की घास है व 100–300 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में उगती है। रेतीली भूमि सेवण घास के लिए उपयुक्त रहती है। बहुत भारी व लवणीय भूमि का चुनाव न करें।

उन्नत किस्में : सेवण घास की अभी तक कोई अनुशंसित (रिलीज्ड) किस्म नहीं है।

भूमि की तैयारी : सेवण घास के लिये भूमि की तैयारी हेतु गर्मियों में कल्टीवेटर या हेरो से 1–2 जुताई करके मिट्टी को भुरभुरी बना लेनी चाहिये, इससे खरपतवार नष्ट हो जाते हैं और बरसात की पहली बारिश का पूरा पानी जमीन द्वारा सोख लिया जाता है।

बुवाई का समय व विधि : घास के बीजों की बुवाई सूखी मिट्टी में मानसून की वर्षा से पहले करना चाहिये। परन्तु ऐसी भूमि जिसमें मिट्टी का कटाव ज्यादा हो वहां पर मानसून की वर्षा आने पर बुवाई करनी चाहिये। सेवण को बीज द्वारा, पौध द्वारा, जड़ों द्वारा व बीजों की गोलियाँ बनाकर लगाया जा सकता है।

बीज द्वारा : सेवण की बुवाई के लिये 6–7 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। बीजों को छिड़ककर या पंक्तियों में बोया जाता है। पंक्तियों में बुवाई हेतु पंक्ति से पंक्ति की दूरी 75–100 से.मी. रखी जाती है। परन्तु अच्छी भूमि में ये दूरी 50–75 से.मी. तक रखी जा सकती है। बीजों की बुवाई के समय बीज व खेत की गीली मिट्टी को 1:5 के अनुपात में मिलाकर 1.5–2.0 से.मी. की गहराई तक करनी चाहिये।

नर्सरी विधि : वांछित घास के बीजों को अप्रैल या मई माह में उचित दूरी पर लगाने के बाद पौधों को चारों तरफ से अच्छी तरह से दबा देना चाहिये। यह विधि बीज द्वारा बुवाई से महंगी होने के कारण प्रचलन में कम है।

जड़ों द्वारा : घास की पुरानी जड़ों को निकालकर जुलाई माह में वर्षा होने पर उचित दूरी पर लगाना चाहिये।

बीजों की गोलियां द्वारा : यह विधि ढ़लान, ऊंची–नीची भूमि पर एवम् अनियमित वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इस विधि में बीज, गोबर, चिकनी मिट्टी, रेत और पानी के मिश्रण से बनी गोलियों से बुवाई की जाती है। गोलियां बीज, गोबर की खाद, चिकनी मिट्टी एवम् रेत 1:35:2.5:2.5 के अनुपात में पानी मिलाकर बनाई जाती है। गोलियां बनाने के लिये मशीन का प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार से बनी गोलियों का व्यास लगभग 4–6 मि.मी. होना चाहिये।

अन्तराशस्य क्रियाऐं : खेत की तैयारी के समय खरपतवार निकाल देने चाहिये। बुवाई के 40 दिन बाद हल्की निराई–गुड़ाई करने से घास की वृद्धि अच्छी होती है एवं उत्पादन में बढ़ोत्तरी होती है।

खाद व उर्वरक : बुवाई के समय 20 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 20 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर देना चाहिये। इस मात्रा को उन क्षेत्रों में देना चाहिये जहाँ वार्षिक वर्षा 300 मि.मी. तक होती है। प्रत्येक कटाई एवं् चराई के बाद 25–40 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर देनी चाहिये।

चरागाह उपयोग : चरागाह लगाने के प्रथम वर्ष में पशुओं की चराई नहीं करनी चाहिये। प्रथम वर्ष घास काटकर खिलाना ही अच्छा रहता है। चरागाह की चराई क्षमता से अधिक पशु चराई दबाव न रखा जाये। प्रथम वर्ष के बाद चरागाह में क्रमबद्ध तरीके से चराई की जानी चाहिये।

चारा उत्पादन : औसतन 5–6 टन प्रति हेक्टेयर हरा चारा एवं 1.5–2.0 टन प्रति हेक्टेयर शुष्क पदार्थ की उपज प्राप्त होती है।

चरागाह रखरखाव : चरागाह की सुरक्षा के लिये इसके चारों तरफ बाड़ लगाना आवश्यक है। चरागाह के चारों तरफ खाई खोदकर कांटेदार झाड़ियों एवम् वृक्षों की बाड़ लगानी चाहिये। बाड़ के लिये नागफनी, थोर, इजरायली बबूल, गोंदा आदि उपयुक्त हैं।

करड़ (*डाइकेन्थियम एन्यूलेटम*)

इस घास को मारवेल, पालकम, जिन्जू आदि नामों से भी जाना जाता है। ऊष्ण एवं ऊपोष्ण क्षेत्रों की यह एक उत्तम चरागाह घास है। करड़ बहुवर्षीय राइजोम्स तने वाली घास है। इसकी शाखाएं तने से सीधी ऊपर की ओर जाती हैं। इसकी संधिपर्व छोटी एवं संधि गुलाबी और रोयेंदार होती हैं, जबकि तना चिकना और चमकीला होता है। परिपक्वता की अवस्था में पौधा 75 से.मी. की ऊँचाई तक उगता है तथा एक पौधा सौ कल्लों तक का उत्पादन करता है। करड़ को पश्चिमी राजस्थान में घोड़ों के लिए उत्तम चारा माना जाता है।

जलवायु और भूमि : यह 350 मि.मी. और इससे अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पायी जाती है। यह शुष्क क्षेत्र के कम वर्षा वाली जगहों में जहां ढ़लान हो पायी जाती है। उच्च गुणवत्ता और उत्पादकता के लिए अच्छी किस्म की चरागाह घास है। यह बलुई दोमट व भारी चिकनी मिट्टी में उगाई जा सकती है। इस घास में रेगिस्तान के शुष्क और अर्धशुष्क अवस्था में उगने की क्षमता है। इसके अलावा सिंचित अवस्था या अधिक वर्षा में भी यह उगायी जा सकती है।

उन्नत किस्में : करड़ की उन्नत किस्में मारवेल–8, आईजीएफआरआई–495–1 और एमजीएम–1 ।

बीज एवं बुवाई : शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में करड़ 50–75 से.मी. की दूरी पर तथा नम एवं सिंचित क्षेत्रों में 30–50 से.मी. की दूरी पर पंक्तियों में बीजों द्वारा बोई जाती है। बीज रोयेंदार एवं हल्के होते हैं। बुवाई के पहले बीज को 1 : 5 अनुपात में (आयतन से) गीली मिट्टी में मिलाना आवश्यक है। बीजों को मिट्टी में एक से.मी. की गहराई पर बोया जाता है। एक हेक्टेयर में दो कि.ग्रा. बीज बोया जाता है। यद्यपि शुरू में पौधों की वृद्धि धीरे होती है, लेकिन एक बार लगने के बाद कल्ले मुक्तरूप से विकसित होने लगते हैं। पौधों को जड़ सहित प्रस्थापन द्वारा भी लगाया जा सकता है। बुवाई की शुरू की अवस्था में बीजों की चरागाह की खरपतवार से तुलना के कारण अंकुरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए अच्छी वृद्धि के लिए एक या दो बार खरपतवार निकालना आवश्यक है। मिट्टी की एक मीटर की गहराई तक जड़ की वृद्धि सबसे अधिक देखी गयी है, और अर्धशुष्क क्षेत्रों में लगभग 10 प्रतिशत जड़ें एक मीटर से अधिक गहराई पर जाती हैं।

चरागाह उपयोग : शुष्क क्षेत्रों में इसके लगाने के पहले वर्ष में कटाई नहीं करनी चाहिए। लेकिन नम एवं सिंचित क्षेत्रों में घास की पहले वर्ष में कटाई की जा सकती है। साधारणतया बीज एकत्रीकरण के बाद घास की वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए घास को काट लेना चाहिए। शुष्क क्षेत्रों के अन्य घासों की तुलना में शुरू की अवस्था में यह अधिक पाचक होती है। लेकिन इसकी पाचकता परिपक्वता बढ़ने के साथ कम होती जाती है। जब पौधा सर्वाधिक वृद्धि प्राप्त कर लेता है तो पुष्पन की शुरू की अवस्था में चराई करानी चाहिए। विभिन्न कटाइयों में पुष्पन अवस्था पर घास में प्रोटीन की मात्रा (शुष्क पदार्थ आधार पर) पाँच से सात प्रतिशत के बीच होती है तथा फास्फोरस की मात्रा 0.43 से 0.50 प्रतिशत के बीच होती है। अर्धशुष्क क्षेत्रों में अगस्त से अक्टूबर तक कटाई का अन्तराल चार सप्ताह का होना चाहिए। दुबारा जल्दी वृद्धि के लिए 10–15 से.मी. की ऊँचाई पर कटाई करनी चाहिए। शुष्क क्षेत्रों में प्राकृतिक चरागाह की क्षमता दो भेड़ों की होती है, लेकिन बोयी गई करड़ चरागाह की दो से बढ़कर पाँच भेड़ प्रति हेक्टेयर हो जाती है अर्धशुष्क क्षेत्रों में चराई क्षमता इसकी दो से तीन गुणी होती है। यह घास ज्यादा चराई को सहन करने की क्षमता रखती है।

चारा उत्पादन : शुष्क एवम् अर्धशुष्क क्षेत्रों में अगस्त से नवम्बर तक पुष्पन अवस्था में दो–तीन कटाई में करड़ का उत्पादन लगभग 10–15 टन प्रति हेक्टेयर हरा चारा होता है। बीज का उत्पादन सितम्बर से नवम्बर के बीच होता है। एक हेक्टेयर में साधारणतया 25–40 कि.ग्रा. बीज प्राप्त होता है।

चरागाह रखरखाव : एक बार लगायी गयी घास चार–पांच वर्षों तक उत्पादन देती रहती है। वर्षा के मौसम के शुरू में पंक्तियों के बीच में गुड़ाई करने से इसकी उत्पादकता बनी रहती है। गुड़ाई से वार्षिक खरपतवारों की वृद्धि भी रूक जाती है। चारा उत्पादन को बढ़ाने के लिए वर्ष में एक बार एक हेक्टेयर में पांच टन गोबर की खाद और 20 कि.ग्रा. नत्रजन डालना चाहिए। सिंचाई के करड़ का उत्पादन अच्छा होता है। सिंचित अवस्था में एक वर्ष में पांच से छः बार कटाई की जा सकती है।

ग्रामणा (*पेनिकम एन्टीडोटेल*)

यह पेनिकोएडी कुल का पौधा है जो शुष्क क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण बहुवर्षीय एवं अधिक उत्पादन देने वाली घास है। इसको काटकर, चराई कराकर व 'हे' बनाकर पशुओं को खिलाई जा सकती है।

वितरण : यह घास भारत, आस्ट्रेलिया, श्रीलंका, अफगानिस्तान व ईरान में पाई जाती है। यह घास प्रायः रेतीले टिब्बों, नदियों के सूखे किनारे, सूखे क्षेत्र व मरूस्थल में पाई जाती है। ऐसे क्षेत्र इसकी जड़ों के विकास के लिए उचित है।

जलवायु एवं भूमि : शुष्क एवं अर्धशुष्क जलवायु में इस घास को उगाया जा सकता है, जहाँ वार्षिक वर्षा 200–1000 मि.मी. तक होती है। विभिन्न प्रकार की भूमि में यह घास उगती है परन्तु रेतीली भूमि में यह

बहुत अच्छा उत्पादन देती है। इसके लिए किसी खास तरह की भूमि की आवश्यकता नहीं होती और इसकी उत्पादन क्षमता उपजाऊ जमीन में बहुत अच्छी होती है।

भूमि की तैयारी: खेत की तैयारी अन्य घासों की तरह की जाती है। दो जुताई करके खेत को समतल बना लेते हैं व खेत से अनावश्यक खरपतवार व झाड़ियाँ निकाल देते हैं।

बुवाई का समय: जुलाई का महीना बुवाई के लिए सर्वोत्तम है। प्रभावी अच्छी वर्षा के बाद खेत में बुवाई की जा सकती है।

बीज दर: जब बीज द्वारा सीधे खेत में बुवाई की जाती है तो 2.5 से 3 कि.ग्रा. बीज एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त रहता है।

बुवाई विधि: बुवाई बीज द्वारा, पौध द्वारा व जड़ों द्वारा की जा सकती है। बीज द्वारा बुवाई करने के लिए एक भाग बीज का व पाँच भाग खेत की नम मिट्टी का मिश्रण खुले हुए उमरों में बोया जाता है। एक से दो माह पुरानी पौध को भी खेत में रोपित किया जा सकता है। पौधों की पुरानी जड़ों को भी बुवाई के काम में लिया जा सकता है। पौधे से पौधे की दूरी 75 से 100 से.मी. व पंक्ति से पंक्ति की दूरी 100 से.मी. रखी जाती है। बुवाई हमेशा उथली की जाती है जिससे बीजों पर मिट्टी कम से कम आऐ।

अंतराशस्य क्रियाएं: चरागाह के उचित विकास के लिए खरपतवारों को निकालना आवश्यक है। खेत को हमेशा खरपतवार रहित रखना चाहिए। जड़ों के उचित विकास हेतु भूमि में वायु संचार जरूरी है। यह जल सोखने व विभिन्न लाभदायक जीवाणुओं की क्रियाशीलता बनाए रखने हेतु भी आवश्यक है। ट्रेक्टर चालित कल्टीवेटर से निराई–गुड़ाई की जा सकती है।

चारा उपयोग: चारे को काटकर, चराकर व 'हे' बनाकर प्रयोग में लिया जा सकता है। चारा उपयोग की उचित अवस्था पुष्पन की पूर्वास्था है। देर से कटाई व चराई करने पर पौधों के तने सख्त हो जाते हैं। पकने की अवस्था में तने बाँस की तरह दिखाई देते है उस समय जानवर चराई के लिए इसे कम पसन्द करते हैं व चारे की गुणवत्ता भी कम हो जाती है। पुष्पन के समय इसमें सूखे पदार्थ की 14 प्रतिशत प्रोटीन होती है। इसी प्रकार शुष्क पदार्थ में 1.8 इथर एक्सट्रेक्ट, 29 प्रतिशत अपरिष्कृत रेशा, 45 प्रतिशत नत्रजन रहित एक्सट्रेक्ट, 9.5 प्रतिशत राख, 0.43 प्रतिशत केल्शियम व 0.30 प्रतिशत फास्फोरस होता है।

चारा उत्पादन: एक हेक्टेयर से 7 से 8 टन हरा चारा प्राप्त होता है। पुष्पन की पूर्वावस्था में काटने पर 20 प्रतिशत सूखा पदार्थ प्राप्त होता है। इस प्रकार 1.5–2.0 टन सूखा चारा प्रति वर्ष प्राप्त होता है। उचित प्रबंधन व सिंचित अवस्था में 30 टन हरा चारा प्रति हेक्टेयर मिलता है।

चरागाह का रखरखाव : एक बार रोपित चरागाह 6–7 वर्ष तक उत्पादक रहता है। स्थापना वाले वर्ष में चारा काटकर खिलाना ही उचित रहता है। इससे जड़ों का पर्याप्त विकास होने में सहायता मिलती है। कटाई जमीन से 10–15 से.मी. छोड़कर करें। आने वाले वर्षों में नियंत्रित विधि से वहन क्षमता के अनुसार चराई कराऐं तथा अत्यधिक चराई से बचें। चरागाह में अनावश्यक झाड़ियों को निकालते रहना चाहिए। जल संग्रहण पर हमेशा ध्यान दें। किसी कारण चराई न होने की अवस्था में चारे की कटाई अवश्य करें। उचित प्रबंधन से चरागाह की उत्पादकता व आयु दोनों में वृद्धि की जा सकती है।

चरागाह लागत : चरागाह विकास के प्रथम वर्ष में लागत ज्यादा आती है जो 4000 से 5000 रू. तक हो सकती है। बाद में लागत कम हो जाती है व लाभ बढ़ जाता है। द्वितीय वर्ष अगर 3000 कि.ग्रा. सूखा चारा प्राप्त होता है तो भी 3000 से 4000 रू. प्रति हेक्टेयर लाभ प्राप्त होता है। घास के चरागाह से अप्रत्यक्ष लाभ जैसे पर्यावरण सुधार, अच्छी भूमि का उपयोग अन्य फसलों के काम में लेना, डेरी उद्योग का विकास, जैव विविधता का बचाव, ऊर्जा का बचाव, रोजगार उपलब्ध कराना आदि भी बहुत ज्यादा होते हैं जिनका मूल्य बहुत ज्यादा होता है। इस प्रकार पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में घास के चरागाहों से अधिक उत्पादन लेकर बार–बार होने वाली चारे की कमी को पूरा किया जा सकता है। ग्रामीण बेरोजगारों को वर्ष पर्यन्त रोजगार मिलता रहता है, दुग्ध उद्योग का विकास होता है व भूमि सुधार भी होता है। अन्ततोगत्वा किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

6. सीमित सिंचाई द्वारा चारा उत्पादन फसल क्रम

पशुपालन शुष्क क्षेत्रों में कृषि अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न हिस्सा है और ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका उपार्जन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शुष्क क्षेत्रों में आहार और चारा संसाधनों की कमी पशुधन उत्पादन के लिए प्रमुख बाधाओं में से एक है। चारा उत्पादन की प्रणाली प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न–भिन्न होती है। एक आदर्श चारा उत्पादन प्रणाली वह है जिससे प्रति इकाई क्षेत्र में सुपाच्य पोषक तत्वों की अधिकतम मात्रा प्राप्त होती है या अधिकतम पशुधन उत्पादकता होती हो तथा पशुओं के भोजन के लिए साल भर रसीले, स्वादिष्ट और पौष्टिक चारे की उपलब्धता सुनिश्चित हो। शुष्क क्षेत्र में पानी सीमित है इसलिए इस क्षेत्र में सीमित सिंचाई के साथ चारा उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकी महत्वपूर्ण है।

फसल क्रम (1)

अंजन घास–अंजन घास–रिजका अंतराःशस्य प्रणाली में 75 मि.मी. कुल वाष्पोर्त्सजन (सी.पी.ई.) के स्तर की व्यवस्था जिससे अधिक चारा उपज के साथ जल और भूमि उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है।

बुवाई का समय : अंजन घास के लिए जुलाई का प्रथम सप्ताह और रिजका के लिए नवंबर का प्रथम सप्ताह का समय उपयुक्त है।

बीज दर : अंजन घास के लिए 5 कि.ग्रा. और अंतराःशस्य में रिजका के लिए 12.5 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर आवश्यक होता है।

बुवाई की विधि : मानसून की बरसात के साथ अंजन घास को 60 से.मी. दूरी पर लाइनों में बोया जाता है और रबी के दौरान रिजका को अंजन घास की पंक्तियों के बीच की जगह में बोया जाता है। इस प्रणाली को गर्मी के मौसम में जारी रखा जा सकता है।

उर्वरक : अंजन घास में 20 कि.ग्रा. नत्रजन और 20 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय और 20 कि.ग्रा. नत्रजन प्रत्येक कटाई के बाद छिटक कर डाला जाता है। रिजका में 20 कि.ग्रा. नत्रजन हेक्टेयर और 60 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय डालने की आवश्यकता होती है। जहाँ पर रिजका की खेती पहली बार की जा रही हो वहाँ बीज को राईजोबियम कल्चर से उपचारित करना चाहिए।

सिंचाई : खरीफ के दौरान अंजन घास को वर्षा आधारित उगाया जाता है इसलिए इसे सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, यद्यपि वर्षा न होने पर एक जीवन रक्षक सिंचाई की आवश्यकता होती है। रबी के मौसम में रिजका को बुवाई पूर्व सिंचाई करें और बाद की सिंचाई 75 मि.मी. कुल वाष्पोर्त्सजन (सी.पी.ई.) यानी 15–18 दिनों के अंतराल और गर्मी के मौसम में सिंचाई 75 मि.मी. कुल वाष्पोर्त्सजन (सी.पी.ई.) यानि

10–12 दिनों के अंतराल पर करने की आवश्यकता होती है। सिंचाई फव्वारा विधि से करनी चाहिए तथा सिंचाई करते समय पानी की गहराई 50 मि.मी. रखनी चाहिए।

कटाई : अंजन घास को हर मौसम में दो बार काटे और रिजका की पहली कटाई बुवाई के 55 दिनों बाद की जाती है और बाद की कटाईयाँ 30 दिनों के अंतराल पर करनी चाहिए। सर्दियों में अंजन घास की बढ़वार धीरे होती है इसलिए कटाई देरी से करनी चाहिए। गर्मियो में अंजन घास की बढ़वार अच्छी होती है। इस प्रकार प्रत्येक फसल से छः–छः कटाईयाँ ली जा सकती है।

उत्पादन क्षमता : हरे चारे की उपज 68–73 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष या सूखे चारे की उपज 15–18 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष होती है।

उपयोगिता : यह तकनीक डेयरी पशुओं को खिलाने के लिए चारा उत्पादन हेतु सिंचाई सुविधाओं वाले किसानों द्वारा अपनायी जा सकती है।

फसल क्रम (2)

लोबिया–जई–बाजरा और बाजरा तथा लोबिया–जई–ज्वार में 50 मि.मी. कुल वाष्पोर्त्सजन (सी.पी.ई.) सिंचाई के स्तर की व्यवस्था जिससे अधिक चारा उपज के साथ जल और भूमि उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है।

बुवाई का समय : बाजरा और लोबिया को जुलाई के पहले सप्ताह में एवं जई को नवंबर के पहले सप्ताह में और गर्मियों में बाजरा और ज्वार को अप्रैल के पहले सप्ताह में बुवाई करें।

बीज दर : लोबिया की एकल फसल के लिए 30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर और लोबिया के अंतराःशस्य के लिए 15 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज का प्रयोग करें और बाजरा के लिए 6 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर एवं रबी में जई के लिए 100 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर और गर्मियों में चारा बाजरा की एकल फसल के लिए के लिए 12 कि.ग्रा. और चारा ज्वार के लिए 30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज का प्रयोग करें।

बुवाई की विधि : सभी फसलों को 30 से.मी. पर लाइन में बोया जाता है। अंतराःशस्य में बाजरा और लोबिया को 1:1 क्रम में उगाया जा सकता है।

उर्वरक : खाद और उर्वरकों की सिफारिश की गई मात्रा सभी फसलों में डालनी चाहिये। 20 कि.ग्रा. नत्रजन और 40 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर लोबिया में बुवाई के समय में डाले तथा बाजरा में 30 कि.ग्रा. नत्रजन और 40 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय पर और 30 कि.ग्रा. नत्रजन छिटक कर और ज्वार में 40 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर नत्रजन और 40 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय पर और 40 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर छिटक कर डालने की आवश्यकता होती है।

सिंचाई : खरीफ के दौरान सभी फसलों को वर्षा आधारित उगाया जाता है परन्तु वर्षा न होने पर जीवन रक्षक के रूप में एक सिंचाई की आवश्यकता होती है। रबी में फसलों की बुवाई के पूर्व सिंचाई की आवश्यकता होती है और बाद की सिंचाई 50 मि.मी. कुल वाष्पोर्त्सजन (सी.पी.ई.) अर्थात् 10–12 दिनों के अंतराल और गर्मी के मौसम में बाद की सिंचाई 50 मि.मी. कुल वाष्पोर्त्सजन (सी.पी.ई.) अर्थात 7–8 दिनों के अंतराल पर करें। सिंचाई फव्वारा विधि द्वारा करनी चाहिए और सिंचाई करते समय पानी की गहराई 50 मि.मी. रखें।

कटाई : सभी फसलों को 50 प्रतिशत फूल आने पर कटाई की जाती है।

उत्पादन क्षमता : हरे चारे की उपज 80–90 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष या सूखे चारे की उपज 16–19 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष होती है।

उपयोगिता : डेयरी पशुओं को खिलाने के लिए चारा उत्पादन हेतु यह तकनीक सिंचाई की सुविधाओं वाले किसानों द्वारा अपनाई जा सकती है।

7. चारे की पौष्टिकता में वृद्धि के उपाय

अकाल के दौरान राजस्थान में खासकर मरू क्षेत्र में हरे व पौष्टिक चारे की कमी की वजह से पशुओं की निर्भरता रेशेदार सूखे चारे व क्रूड प्रोटीन युक्त कृषि उत्पादों पर बढ़ जाती है। ऐसे में पशुओं को सूखे चारे, चावल की पुआल या खाखला (तूड़ी) आदि ही आहार के रूप में दिया जाता है इससे उनका पेट तो भर सकता है पर उनके शरीर में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। ऐसी स्थिति में कई बीमारियां पशुओं को चपेट में ले लेती हैं जिनके कारण पशु कमजोर और/या कालग्रस्त हो जाते हैं, इससे पशुपालकों को बहुत आर्थिक नुकसान होता है। इसलिए आवश्यक है कि पशुओं को संतुलित चारा खिलाया जाये। चारे को पौष्टिक बनाने की कुछ विधियों का नीचे वर्णन किया गया है।

यूरिया द्वारा उपचार

कम गुणवत्ता वाले चारे अथवा खाखला को यूरिया से उपचारित करने पर चारे में पौष्टिक तत्वों की उपलब्धता पशु के लिए अधिक हो जाती है एवं पचनीयता में काफी बढ़ोतरी होती है। इसको पशु चाव से खाते हैं एवं बछड़े–बछड़ियों में बढ़वार तेजी से होती है तथा दुधारू पशुओं का दूध व दूध में वसा की मात्रा बढ़ती है। सूखे चारे को निम्नलिखित विधि से तैयार करें:

- एक सौ कि.ग्रा. सूखे चारे को उपचारित करने के लिये 4 कि.ग्रा. यूरिया एवं 60 लीटर पानी लें तथा उपचारित चारे को ढकने के लिये एक काली प्लास्टिक की शीट भी लेवें।
- 15–15 लीटर की दो बाल्टियाँ लेवें तथा उसमें एक कि.ग्रा. यूरिया घोल लेवें।
- 50 कि.ग्रा. सूखे चारे को साफ जमीन (पक्की या गोबर से लेपी हो) पर समान रूप से फैला देवें।
- इस सूखे चारे पर बाल्टियों में बनाया गया यूरिया का घोल समान रूप से छिड़कें जिससे कि सम्पूर्ण चारा अच्छी प्रकार गीला हो जाये।
- फिर इस चारे को पैरों से 5 से 10 मिनट तक अच्छी तरह दबाऐं जिससे चारे में उपस्थित हवा पूर्ण रूप से निकल जाये।
- दुबारा फिर 50 कि.ग्रा. सूखे चारे को इसी ढेर पर फैला देवें एवं दो बाल्टी यूरिया घोल को उस पर छिड़कें फिर ऊपर बताये अनुसार उसे दबायें।
- इस प्रकार जितना चाहें उतना चारा डालते जावें एवं उसके अनुसार यूरिया की मात्रा का घोल छिड़क कर दबाते जावें।

- आखिर में इस चारे को प्लास्टिक की शीट से अच्छी तरह से ढक कर उस पर पत्थर रख दें जिससे चारे में हवा ना जाये।
- 10 से 15 दिनों के बाद चारा तैयार हो जाता है अब उसे एक कोने से प्लास्टिक की शीट खोलकर चारा निकाल लेवें ।

यूरिया उपचारित चारे को प्लास्टिक की शीट के अन्दर से निकालने के बाद उसे 5 से 10 मिनट खुले में रखें, जिससे उसमें अमोनिया गैस की गंध कम हो जाये। यदि पशु शुरू–शुरू में इसे नहीं खाये तो इसमें थोड़ा सा गुड़ मिला घोल छिड़क कर खिलावें। धीरे–धीरे पशु को इसकी आदत हो जायेगी। इसको खिलाते समय पशु को पानी अधिक मात्रा में उपलब्ध करावें। चारे को यूरिया उपचार करते समय यह ध्यान रहे कि उपचार हेतु साफ पानी का प्रयोग करें। यूरिया एवं पानी की मात्रा सही अनुपात में लेवें तथा यूरिया को पानी में अच्छी प्रकार से घोल लें। यूरिया का घोल पशुओं की पहुंच से दूर रखें क्योंकि इसको पीने से पशु मर सकता है। बीमार व कम उम्र (छः माह तक) के पशुओं को यह चारा नहीं खिलावें।

गैर परम्परागत साईलेज

पौष्टिक चारे की कमी एवं कुपोषण की समस्या को दूर करने के लिए एवं सूखे या गर्मियों के समय पर्याप्त पौष्टिक चारे की उपलब्धता के लिए एक गैर परम्परागत साईलेज आहार विकसित किया गया है। परम्परागत साईलेज की तुलना में इस आहार को बनाने के लिए हरे चारे की आवश्यकता नहीं है। अपितु सूखे चारे, घास, भूसे, कड़बी व पुवाल आदि किसी भी निम्न पोषण वाले कृषि उत्पादोत्पाद से इसे बनाया जाता है। गैर परम्परागत साईलेज में सूक्ष्मजैविक ऊर्जा का उपयोग किया गया है इसलिए ये प्रक्रिया सरल है एवं हवारहित गड्ढों में सूखे चारे में उपयुक्त नमी एवं सरलता से उपलब्ध रसायन जैसे– गुड़, यूरिया, छाछ आदि मिलाकर इसे पूरा किया जाता है। इस आहार से क्रूड प्रोटीन स्तर में 3.5–4.5 गुणा वृद्धि होती है।

तुम्बा खल

यह देखा गया है कि पशु आहार में 25 प्रतिशत तुंबा (*सिट्रलस कोलोसिंथिस*) खल मिलाने से गाय की उत्पादकता या प्रजनन संबधी कार्यों पर कोई विपरीत असर नहीं पड़ता है। तुंबा खल में 18–20 प्रतिशत अपरिष्कृत प्रोटीन होता है। इसको खिलाने से न केवल आर्थिक बचत संभव है अपितु पशु आहार की भी बचत होती है। तुंबा खल, तेल शोधक मिलों से प्राप्त की जा सकती है।

खेजड़ी (लूंग) की पत्तियों को टैनिन रहित करना

खेजड़ी (*प्रोसोपिस सिनरेरिया*) पश्चिमी राजस्थान के सम्पूर्ण मरू क्षेत्र में पाया जाता है। इसकी पत्तियां पशु आहार के रूप में उपयोग में ली जाती हैं। इसकी पत्तियों में सामान्यतः 15 प्रतिशत प्रोटीन

होता है परन्तु पचनीय प्रोटीन केवल 5 से 5.5 प्रतिशत ही होती है, जिसका कारण टैनिन की अधिक मात्रा है। इस आहार को टैनिन रहित करने के लिए विभिन्न प्रयोग किए गये हैं। पत्तियों को 1 प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट के घोल में 6 घंटे तक भिगोने से एवं पानी गिराने से 94 प्रतिशत तक टैनिन निकाला जा सकता है।

बहुपोषकीय आहार बट्टिका

मरू क्षेत्र में पशुओं का आहार अधिकतर ऐसे चारे पर आधारित होता है जो रेशेदार, निम्न पोषक एवं अधिक जगह घेरने वाले होते हैं। इसके समाधान के लिए चारे के घनत्व को बढ़ा कर कम से कम जगह में रखने के उद्देश्य से इस बट्टिका का निर्माण किया गया है। शीरा, यूरिया, खनिज लवण, डोलोमाईट, साधारण नमक आदि को अरडू की सूखी पत्तियों, गेहूँ की चापड़ आदि के साथ मिला कर एक लकड़ी के सांचे में दबाया जाता है। सांचा उपलब्ध होने पर यह बट्टिका गांव में भी बनाई जा सकती है। इसको खिलाने से दाने की बचत हो सकती है एवं पशुओं में भार वृद्धि भी देखी गई है। इनको लम्बे समय तक रखा एवं एक जगह से दूसरी जगह पर आसानी से ले जाया जा सकता है।

8. सम्पूर्ण पशु आहार बट्टिका

पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में प्राय अकाल की परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं जिससे उत्पादन के साथ–साथ पशु पालन पर भी गहरा असर पड़ता है। अकाल के समय चारे के अभाव के कारण पशु उत्पादन बाधित होता है तथा अकाल समयावधि बढ़ने से पशु स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अकाल में पशुधन बचाने हेतु देश के विभिन्न प्रांतों से चारे की व्यवस्था की जाती है जिसका खर्चा बहुत ज्यादा होता है, इसलिए ऐसे समय में पशुधन के लिये सम्पूर्ण पशु आहार मिश्रण व बट्टिका का बहुत महत्व है।

सम्पूर्ण पशु आहार बट्टिका/मिश्रण

सम्पूर्ण पशु आहार बट्टिका या मिश्रण एक सम्मिलित सम्पूर्ण आहार व्यवस्था है जिसमें घास चारे के साथ–साथ पौष्टिक/संतुलित दाने का भी समावेश होता है। सम्पूर्ण पशु आहार में चारा व पशु दाने को ऐसे अनुपात में मिलाया जाता है जिससे पशुओं के निर्वाह व उत्पादन में आवश्यक पोषक तत्वों की जरूरत पूर्ण की जा सके । सम्पूर्ण पशु आहार खिलाने के बाद पशु को चराई के लिए बाहर भेजने की जरूरत नहीं होती।

सम्पूर्ण पशु आहार में उपयोग में आने वाले कृषि उत्पाद

सम्पूर्ण पशु आहार मिश्रण या बट्टिका में कई प्रचलित व अप्रचलित वस्तुएं उपयोग में ली जाती हैं।

1. चारे के स्त्रोत: प्रदेश में उपलब्ध घास, ज्वार, बाजरी की कुतर, पेड़ के सूखी पत्तियां मूंग, मोठ ग्वार, मूंगफली का चारा।

2. दाने के स्त्रोत: सभी धान्य वर्गीय अनाज।

3. ऊर्जा स्त्रोत: शीरा, गुड़।

4. प्रोटीन वर्गीय स्त्रोत: सभी प्रकार की खल, मील जैसे मूंगफली/कपास/सोयाबीन/रायड़ा/तुम्बे/तिल की खल/ग्वार कोरमा व अप्रचलित स्त्रोत में यूरिया।

5. नमक, लवण मिश्रण व विटामिन मिश्रण।

6. बाईन्डर स्त्रोत: ग्वार गम पाउडर, कॉपर आक्साईड।

सम्पूर्ण पशु आहार बट्टिका बनाने की विधि

क्षेत्रीय परिस्थितिनुसार उपयुक्त चारे व पौष्टिक दानें का चयन किया जाता है जिसमें उनकी गुणवत्ता एवं कीमत भी देखी जाती है, जिससे पशु आहार सस्ता व अधिक उपयोगी साबित हो।

- चारे व पौष्टिक दाने का प्रमाण पशु आहार मिश्रण में आवश्यक पौष्टिक तत्वों की पूर्णता हेतु 40 : 60 से 70 : 30 प्रतिशत मात्रा तक तय की जाती है।
- अप्रचलित स्त्रोत जैसे यूरिया को कम से कम पानी में घोलकर वह घोल शीरे (मोलासिस) में मिलाया जाता है व इस घोल में नमक, लवण व विटामीन मिश्रण के साथ मिलाया जाता है। इस मिश्रण में खल, चुरी व रेशा के स्त्रोत– गेहूँ की चापड़, चावल के ब्रान के साथ मिश्रिंत किया जाता है।
- चारे की कुट्टी के साथ पौष्टिक दाना मिश्रण इस तरह मिलाया जाता है जिसमें पहले तय किये गये चारे व दाने की मात्रा/प्रमाण सम्मिलित हो। इस मिश्रण में बट्टिका बनाते समय बाइंडर का भी प्रयोग किया जाता है।
- यह मिश्रण 1 या 3 कि.ग्रा. तक दाब यंत्र में विशिष्ट दाब देकर दबाया जाता है, जिससे आयातकार/वर्गाकार बट्टिका तैयार हो जाती है।

सम्पूर्ण पशु आहार बट्टिका बनाने की मशीन

संपूर्ण आहार बट्टिका तैयार करने के लिए पशुधन केन्द्रित आजीविका सुधार परियोजना के तहत नागौर जिले के हरसोलाव गांव में एक मशीन स्थापित की गई है (चित्र 16)। यह मशीन एक घंटे में 4 कि. ग्रा. की 25 बट्टिका दबाव विधि द्वारा तैयार करती है। सम्पूर्ण आहार बट्टिका को बनाने के लिए सामग्री में यूरिया को कम से कम पानी में घोल कर शीरे में मिलायें, नमक व लवण मिश्रण को साथ मिलाकर खल, चूरी व रेशा के स्रोत जैसे की गेहूँ की चापड़ अथवा चावल की ब्रान के साथ मिश्रित कर इस तैयार पौष्टिक मिश्रण को चारे की कुट्टी के साथ अच्छी तरह मिला दिया जाता है एवं इसे मशीन में उचित दबाव पर रखकर बट्टिका को तैयार कर लेते हैं।

सम्पूर्ण आहार बट्टिका बनाने के लिए सामग्री की मात्रा

उपलब्ध घास, ज्वार, बाजरी की कुतर, गेहूँ का खाखला, बाटा, गुड़, खनिज लवण आदि को निश्चित अनुपात में मिला कर मशीन द्वारा सम्पूर्ण आहार बट्टिका बनाई जाती हैं (सारणी 11)।

चित्र 16 नागौर जिले के हरसोलाव गांव में स्थापित सम्पूर्ण पशु आहार बट्टिका बनाने की मशीनें

सारणी 11 सम्पूर्ण आहार बट्टिका बनाने के लिए सामग्री

सामग्री	मात्रा (प्रतिशत)
चारा	70.0
पानी	3.5
बांटा	26.5
गेहूँ की चापड़	10.0
गुड़	10.0
ग्वार कोरमा	2.5
यूरिया	1.0
नमक	1.0
डोलोमाईट	1.0
खनिज लवण	1.0

सम्पूर्ण पशु आहार मिश्रण बट्टिका को खिलाना

पशुओं के लिए यह बट्टिका एक सम्पूर्ण आहार है, इसलिए पशुओं को अलग से चारा या दाना देने की आवश्यकता नहीं होती। पशुओं को खिलाने के लिए 4 कि.ग्रा. की बट्टिका हाथ से तोड़कर खेली में डाली जा सकती है व पशु कुछ दिनों के बाद इसे बड़े चाव से खाता है। गाय व भैंस के लिए 4 कि.ग्रा. वाली 2 से 3 सम्पूर्ण आहार बट्टिका की आवश्यकता होती है व भेड़ व बकरियों के लिए 1 बट्टिका पूरे दिन के पोषण के लिए पर्याप्त है।

सम्पूर्ण पशु आहार बट्टिका के लाभ

अकाल के समय की परिस्थितियों के लिए ऐसी बट्टिकाऐं निश्चित रूप से बेहतर हैं। इनका भण्डारण कर सम्पूर्ण पशु आहार बैंक भी बनवाया जा सकता है। ऐसी बट्टियाँ लगभग एक वर्ष तक संग्रहित की जा सकती हैं। चारे व दाने के अभाव से ग्रस्त पशुओं को यह संतुलित पोषण प्रदान कर सकती है।

- दुधारू गायों को इसे खिलाने से प्रचलित आहार पद्धति की अपेक्षा प्रति लीटर दूध उत्पादन में होने वाले पोषण खर्च में लगभग रूपये 0.50 की कमी आती है। साथ ही इन गायों की प्रजनन क्षमता भी सुधरती है। बकरियों में भी दूध की मात्रा में लगभग 25–30 प्रतिशत वृद्धि देखी गई है।
- बकरी व भेड़ों के बच्चों में वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी देखी गई लगभग 10–12 महीनों में 18–20 कि.ग्रा. वजन प्राप्त हो सकता है। बकरी के बच्चों में 2 माह बाद माँ का दूध बन्द करने पर उनका पोषण सम्पूर्ण आहार बट्टिका पर पूर्ण रूप से किया जा सकता है। इससे बकरियों का दूध बढ़ाकर उससे होने वाली आय बढ़ाई जा सकती है।

9. चारा संरक्षण

पशुओं के स्वास्थ्य, उनकी अच्छी कार्य क्षमता तथा दुग्ध उत्पादन के लिये चारे का लगातार व उपयुक्त मात्रा में उपलब्धता अत्यन्त आवश्यक है। चारा व घास मौसम विशेष में ही उपलब्ध होते हैं। हरा चारा तो सिंचित क्षेत्र को छोड़कर केवल वर्षा ऋतु में ही उपलब्ध हो पाता है। बारिश के मौसम में हरा चारा आवश्यकता से अधिक मात्रा में उपलब्ध रहता है, लेकिन सर्दी में उसकी उपलब्धता कम हो जाती है। गर्मियों में तो हरा चारा बिल्कुल भी नहीं मिल पाता है जिससे पशु अपनी क्षमतानुसार दूध उत्पादन नहीं कर पाता है। अतः अधिक उत्पादन वाले मौसम में अतिरिक्त हरे चारे को सुरक्षित रख कर उसे आवश्यकता पड़ने पर पशु को खिलाया जा सकता है। हरे चारे को सुरक्षित रखने की दो विधियाँ है –

1. साइलेज

2. हे (सुखाया हुआ हरा चारा)

साइलेज

साइलेज अच्छी प्रकार से कुट्टी काटने के बाद सुरक्षित रूप में रखा हुआ मुलायम हरा चारा होता है जो पशुओं को उस समय खिलाते हैं जब हरा चारा बहुत कम मात्रा में या बिल्कुल उपलब्ध नहीं होता। साइलेज बनाने के कई फायदे हैं जैसे साइलेज के रूप में फसलों को सुरक्षित करके एक सीमा तक पोषक तत्वों की मात्रा को नष्ट होने से बचाया जा सकता है। साइलेज बनाने के लिये काटी गई फसल के साथ खरपतवार भी काट लिये जाते हैं, जिससे खरपतवार नियंत्रण में मदद मिलती है। साइलेज पशुओं को हर वर्ष खिलाया जा सकता है। सूखे चारे की अपेक्षा भण्डारण में यह कम जगह घेरता है। सामान्यतः पशु, चारे की पत्तियां खा जाता है, एवं डंठल छोड़ देता है। साइलेज पूरे पौधे का बनाया जा सकता है। साइलेज की फसल को उसकी फूल वाली अवस्था में ही काट लिया जाता है। इस प्रकार खेत जल्दी खाली हो जाता है जिसमें दूसरी फसल ली जा सकती है। जिन फसलों में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक होती है वे साइलेज बनाने के लिये उत्तम होती हैं ज्वार, मक्का, बाजरा, जई, नेपियर घास, सूडान घास आदि साइलेज बनाने के लिये उपयुक्त हैं।

साइलेज बनाने का तरीका : साइलेज बनाने के लिये जमीन में गड्ढा बनाया जाता है, जिसे साइलो कहते हैं। यह साइलेज भूमि में एक गोल या समकोण चतुर्भुज आकार का गड्ढा खोदकर बनाया जाता है। गोल गड्ढा अधिक अच्छा होता है क्योंकि इसमें चारे को दबाना व हवा को बाहर निकालना आसान होता है। 2.8 मीटर व्यास तथा 3.6 मीटर गहराई वाले एक साइलो में करीब साढ़े पांच टन हरा चारा सुरक्षित रखा जा सकता है। चारे की मात्रा अधिक हो तो साइलो का आकार बढ़ाया भी जा सकता है।

साइलेज तैयार करने के लिये आवश्यकतानुसार गड्ढा खोद लें। अब जिस फसल का साइलेज बनाना हो उसको पकने से पहले फूल आते समय जब पौधे में नमी का मात्रा 65 प्रतिशत हो काट कर कुट्टी कर लें। अब गड्ढे में सबसे नीचे कुछ घास बिछा दें। फिर कुट्टी को साथ के साथ गड्ढे में भरते जाते हैं। साइलेज की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिये कुट्टी पर एक प्रतिशत नमक व एक प्रतिशत गुड़ या शीरे के घोल का छिड़काव करना चाहिये। थोड़ी–थोड़ी देर में कुट्टी को ट्रेक्टर, बैल या आदमी के पैरों से दबाते हैं। कुट्टी को इतना दबाना चाहिये कि उसके बीच में हवा बिलकुल भी नहीं रहे क्योंकि हवा रह जाने पर साइलेज खराब हो जाता है। गड्ढे को जमीन से 3–4 फीट ऊँचाई तक भरना चाहिये। पूरे गड्ढे को एक ही दिन में जितना जल्दी हो सके उतना जल्दी भर देना चाहिये। गढ्ढा भर जाने पर उसे घास फूस या पॉलीथीन से ढक्कर गीली मिट्टी व गोबर का लेप करें। लगभग दो–ढाई महीने में साइलेज बनकर तैयार हो जाता है जिसे आवश्यकतानुसार पशुओं को खिलाया जा सकता है। हरी से हल्की बादमी रंग का साइलेज जिसमें अच्छी महक हो सर्वोत्तम माना जाता है।

साइलेज का उपयोग : जब साइलेज बनकर तैयार हो जावे तो गड्ढे को एक किनारे से थोड़ा सा खोलकर आवश्यकतानुसार निकाल लें तथा गड्ढे को वापिस अच्छी तरह से बन्द कर दें ताकि साइलेज में हवा नहीं लगने पाये। साइलेज के गड्ढे को एक साथ पूरा नहीं खोलना चाहिये क्योंकि ऐसा करने पर साइलेज की पूरी सतह हवा के सम्पर्क में आ जायेगी एवं साइलेज खराब हो जायेगा। राशन में 10 से 15 कि.ग्रा. साइलेज प्रति पशु खिलाया जा सकता है। साइलेज की अभ्यस्तता के लिए पशु एक दो दिन तक इसको न भी खाये तो निराश नहीं होना चाहिये। यदि पशुओं को रहने वाले स्थान पर ही खिलाया जाता है तो साइलेज दूध दुहने के बाद खिलाना चाहिये ताकि दूध में साइलेज की गन्ध न जा सके।

'हे' (सुखाया हुआ हरा चारा)

हरे चारे को लगभग 15–20 प्रतिशत नमी तक सुखाया जाता है जिसे 'हे' कहा जाता है जो कि तैयार किये जाने के बाद पोषण मान में बिना किसी विशेष हानि के गोदाम में रखा जा सकता है। हरा चारा काटने के बाद सूखने की प्रक्रिया बहुत तेजी से होनी चाहिये क्योंकि जब तक कटा चारा पूरी तरह से सूख नहीं जाता, चारे में लगातार रासायनिक प्रतिक्रिया होने से मूल्यवान कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा विटामिन की हानि होती है। 'हे' को मुख्य रूप से चरागाह से प्राप्त होने वाली घासें जैसे सेवण, धामण, सूडान घास, रोड्स घास आदि से बनाया जाता है। इनके अलावा रिजका, बरसीम, लोबिया, ज्वार, जई, मक्का का भी 'हे' तैयार किया जा सकता है। 'हे' बनाने के लिये मुख्य रूप से तीन विधियां– (1) जमीन पर सुखाने की विधि (2) ट्राइपोड विधि व (3) फार्म फेन्सेज विधि काम में ली जा सकती हैं।

'हे' बनाने का तरीका : 'हे' बनाने के लिये जमीन पर सुखाने की विधि बहुत आसान है। इस विधि से 'हे' बनाने के लिये चारे को काटने के बाद, जमीन पर 25–30 से.मी. मोटी सतहों या छोटे–छोटे ढेरों में

फैलाकर धूप में सुखायें। यदि धूप तेज न हो तो चारे को अधिक पतली सतहों में फैलायें। जब पौधों की ऊपर की अधिकांश पत्तियां सूख जायें तथा कुरकुरी हो जाये तो चारे को इकट्ठा करके 5 कि.ग्रा. भार तक के ढेर बनायें। जैसे ही छोटे ढ़ेरों के ऊपर वाले पौधों की पत्तियाँ सूख जायें (परन्तु मुड़ने पर एकदम टूटे नहीं) ढेरियां को पलट देना चाहिये। चारे की ढ़ेरियों को ढ़ीला रखें ताकि उनमें हवा आती–जाती रहे। ढ़ेरियों को पलटने का यह कार्य दूसरे दिन प्रातः करना चाहिये। दूसरे दिन शाम को इन छोटी–छोटी ढ़ेरियों को दस–दस कि.ग्रा. के ढ़ीले ढ़ेरों में इकट्ठा कर लेना चाहिये। फिर इन ढेरो को अगले दिन तक के लिये छोड़ दें ताकि भंडारण से पूर्व सारा चारा पूर्णरूप से सूख जायें। इस प्रकार तैयार 'हे' को बाड़े या कसे हुये छप्पर में जमा कर दें।

जब मौसम 'हे' बनाने के अनुकूल न हो तो ट्राइपोड विधि द्वारा हे तैयार किया जाता है। इसके लिये 3 खम्बे झुकी हुई अवस्था में इस प्रकार जोड़े जाते हैं कि उनके आधार पर एक समभुज त्रिकोण बन जाये। खम्बों के स्वतन्त्र सिरे आपस में बांध देते है। इस प्रकार बने ट्राइपोड पर 'हे' तैयार की जाती है। जब मौसम भूमि पर 'हे' बनाने के लिये अनुकूल न हो तो रिजका, बरसीम, जई का 'हे' खेत की बाड़ पर फैलाकर तैयार किया जा सकता है।

10. उन्नत बीजों की उपलब्धता के स्रोत

निम्नलिखित संस्थानों व संगठनों से चारा फसलों के बीज की उपलब्धता के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

1. भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)
2. भाकृअनुप–भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उत्तर प्रदेश)
3. भाकृअनुप–केन्द्रीय भेड़ और ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर (राजस्थान)
4. सभी राज्यों के सभी कृषि विश्वविद्यालय
5. राष्ट्रीय बीज निगम
6. राजस्थान राज्य बीज निगम व अन्य राज्यों के बीज निगम
7. चारा उत्पादान एवं प्रदर्शन के लिए क्षेत्रीय स्टेशन, सूरतगढ़, राजस्थान
8. केन्द्रीय चारा बीज उत्पादन फार्म, हेसरगट्टा (बैंगलोर)
9. राज्यों के सभी पशुपालन निदेशालय
10. पंजीकृत निजी बीज उत्पादक

वार्षिक चारा फसल चक्र

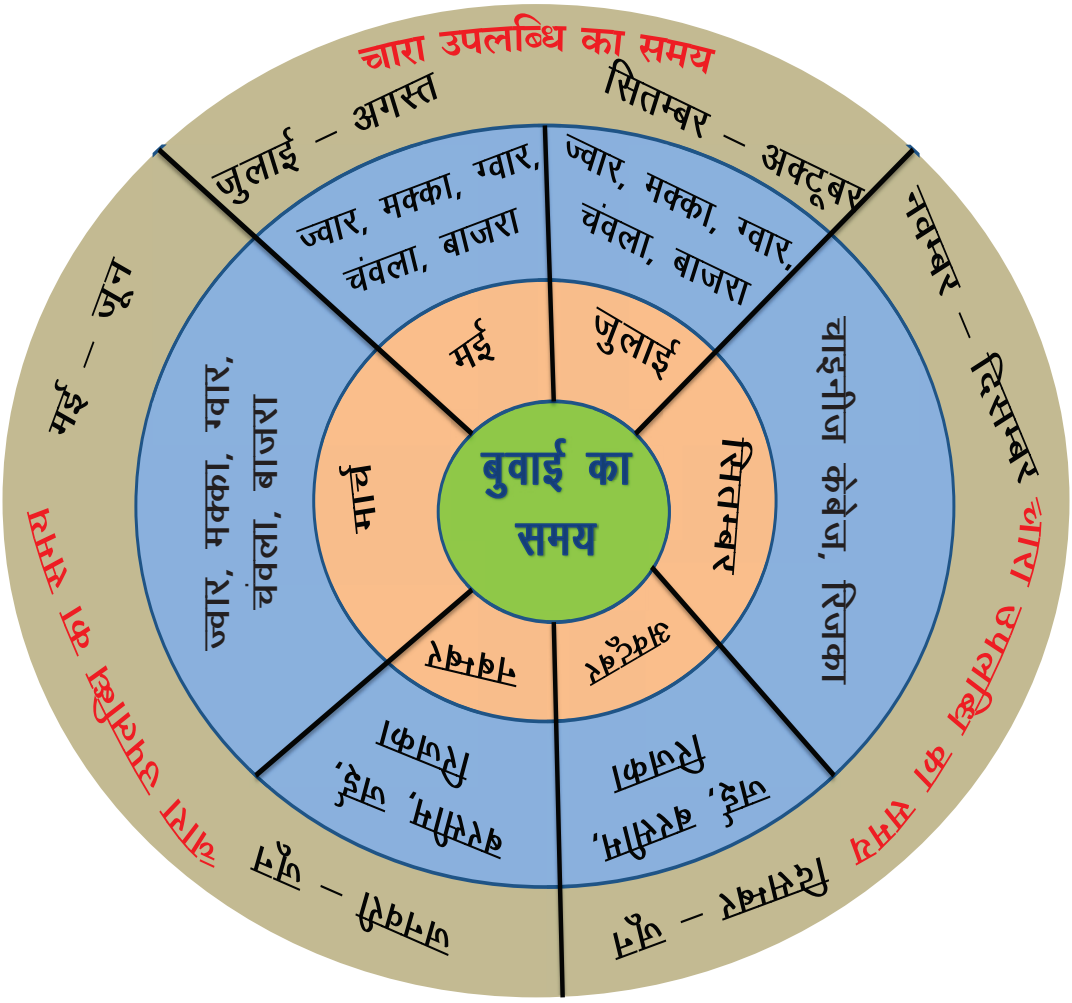

CAZRI™

Enhancing resilience of arid lands